दुखवा में बीतल रतिया

रामेश्वर उपाध्याय



दुखवा में बीतल रतिया

(कहानियाँ)

अंकुर प्रकाशन

दिल्ली-११००३२

दुखवा में बीतल रतिया

रामेश्वर उपाध्याय

मूल्य : ३०.०० रुपये
प्रकाशक : अंकुर प्रकाशन
१/३०१७, रामनगर, मंडोली रोड
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

प्रथम संस्करण : १६८५
मुद्रक : नरेन्द्र प्रिंटर्स हाउस
कृष्ण नगर, दिल्ली-११००५१

कथाकार भीष्म साहनी की दृष्टि में···

पिछले कुछ सालों से हिन्दी कहानी में, विशेषकर समाजोन्मुख कहानी में, एक नया तेवर देखने को मिला है—अपने आस-पास की ज़िन्दगी से सीधा साक्षात्कार करने की प्रवृति। इसमें कोई लाग-लपेट नहीं होती, न कोई द्विविधा, न कोई पूर्वाग्रह। लेखक जिस स्थिति विशेष को चुनता है, उसे बड़ी निर्ममता और बड़े दो-टूक ढ़ँग से उघाड़ता चला जाता है, मानो वह आज के जीवन के यथार्थ को, उसकी पूरी नग्नता में हमारे सामने रख देना चाहता हो। यह विशेषकर उस स्थिति के भीतर पाए जाने वाले अन्तर्विरोध और उससे प्रभावित इन्सानी रिश्तों के सम्बन्ध में होता है।

जमाना सचमुच बदल रहा है। पिछली पीढ़ी के लेखकों का नज़रिया आज के यथार्थ के प्रति इतना बेलाग और दो-टूक नहीं हो पाता। शायद इसकी अपेक्षा भी नहीं की जा सकती, क्योंकि उनकी यादें, उनके संस्कार, बीते कल की उनकी आशाएँ-आकाँक्षाएँ उनके आड़े आती रहती हैं और उनकी दृष्टि को प्रभावित करती रहती हैं। आजादी के पहले के देशव्यापी संघर्ष, लोगों के दिलों में पाई जाने वाली छटपटाहट, देश के जीवन में अनेक व्यक्तियों, राजनयिकों के साथ लगाव और आज के जमाने की बीते जमाने के साथ तुलना करने में ही सारा वक्त बीत जाता है।

नई पीढ़ी का लेखक इन पूर्वाग्रहों से मुक्त है। उसकी नज़र आज की नज़र है। वह आज के जीवन की विडम्बनाओं-विसंगतियों को अतीत के सन्दर्भ में नहीं देखता, उन्हें आज की नज़र से ही देखता है।

इस संग्रह की अधिकांश कहानियों में भी इस दृष्टि की झलक मिलती है। रामेश्वर उपाध्याय उन चंद युवा कहानीकारों में से हैं, जो इसी बेलाग नज़रिये के कारण अपनी रचनाओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। उनकी कहानियों में—भले ही वे निजी अनुभवों पर आधारित हों, अथवा

आस-पास की ज़िन्दगी में से ली गई हों—एक प्रकार की सादगी, स्पष्टता और पैनापन पाया जाता है। उनकी नज़र ज़िन्दगी के अनेक पहलुओं की ओर गई है। कहीं हम जेलखाने की ऊँची-ऊँची दीवारों के पीछे जा पहुँचते हैं, तो कहीं गली-चौराहे की भीड़ में अपने को खड़ा पाते हैं, जो एक रिक्शा वाले के पिट जाने पर इकट्ठा हो आती है, या एक तरुण लेखक के मनोद्वेगों के दायरे में, जो अपनी पहली रचना के छप जाने पर इतना उत्साहित है कि जीवन की सभी कटुताएँ भूल चुका है। ये सभी कहानियाँ हमारे सामने जीवन का एक प्रमाणिक एवं सटीक चित्र प्रस्तुत करती हैं। पर इतना ही नहीं, सभी के पीछे लेखक का गहरा लगाव, मानवीय सद्भावना और प्रतिबद्धता भी झलकती है। वह समाज का यथावत् चित्रण कर देने से ही सन्तुष्ट नहीं, वरन् परिवर्तन की उन आदतों, ध्वनियों को भी सुनता है, जो बढ़ते जुलूसों की पदचाप में ही नहीं, जेल के सींखचों के पीछे पाए जाने वाले सन्नाटे में भी सुनाई दे जाती है।

रामेश्वर उपाध्याय की कलम से सशक्त, सुन्दर साहित्य पढ़ने को मिलता रहेगा, ऐसा मुझे विश्वास है।

—भीष्म साहनी

क्रम

बहुक्म-ए-वजीरे आजम

अभी-अभी बारह का घण्टा लगा है। रात काफी गहरा चुकी है। आज सर्दी भी बढ़ गई है। वार्ड के बाहरी बरामदे से वार्डरों के बूटों की खट-खट की आवाजें आ रही हैं। कुछ ही देर पहले कोई ट्रेन बड़ी तेज शोर मचाते हुए गुजर गई है। कहीं आसपास में हरि-कीर्तन जमा हुआ है। ढोल-मजीरे की हलचल में कभी-कभी उसका मन खो जाता है। उसके अन्तर में एक विचित्र तरह की छटपटाहट है। उसे नींद नहीं आती। जेल की पूरी आबादी गहरी नींद में सो रही है। तेरह नम्बर वार्ड की लौह सलाखों वाली खिड़की पर वह घण्टों से बैठा हुआ है। इस कटी कम्बल से उसकी सर्दी भी नहीं जाती। फिर भी, खिड़की से आती सर्द-बर्फीली हवाओं को वह झेल रहा है और बैठा हुआ है। इस जेल में वर्ष-भर से लाश की तरह पड़ा हुआ है और बैठे-बैठे जड़ बनता जा रहा है। उसके मस्तिष्क में शून्य भर गया है। ठहर-ठहर कर कई बातें दिमाग में आती हैं, लेकिन सारी-की-सारी अधूरी रह जाती हैं। बेतरतीबी से विचार सूझते हैं और गड्डमड्ड होकर विलीन हो जाते हैं। ···माँ की सख्त बीमारी···पत्नी के पेट का कमजोर बच्चा···भगीने का कटा हुआ हाथ···जेलर का अमानुषिक व्यवहार···आम कैदियों की बदतर स्थिति···देश में फासिस्ट शक्तियों के मज़बूत होते शिकंजे और न जाने, इसी तरह की कितनी बातें। फिर कभी कीर्तन की ओर मन खिच जाता है तो कभी सर्दी की ठिठुरन से चीखते सियारों के 'हुआ'-'हुआ' से संवेदना चिपक जाती।

बाहर बहुत कुहासा है। जेल के लैम्प पोस्टों की रोशनी ढिबरी से भी धीमी लगती है। अस्पताल वार्ड के सामने नीम के दरख्त के नीचे एक वार्डर ओवरकोट में छिपकर बैठा है। वह खैनी पीट रहा है। उसे इच्छा

होती है कि उसे इधर ही बुला ले। उससे पूछे कि जेल कैसा चल रहा है। बाहर के हाल-चाल क्या हैं? आज के रेडियो-न्यूज़ में कौन-सी विशेष बातें हैं? जिन बन्दियों को कल डण्डा बेड़ी-जेल की सज़ा हुई, वे कब तक छूट पायेंगे? फाँसी वाले बन्दी की लाश का क्या हुआ? लेकिन वह केवल सोच-कर ही रह जाता है।

लैम्प पोस्ट की बत्तियाँ दो बार बुझ-बुझ कर जली हैं। यह जेल का इनर सिगनल है। जब रात के समय कोई बन्दी जेल के अन्दर आने को होता है, तो इस सिगनल से वार्डरों को सावधान किया जाता है और पहरे पर तैनात हवलदार को जेल गेट में आकर बन्दी को ले जाने का आदेश दिया जाता है। सिगनल पाकर हवलदार ऊँची आवाज़ में हाँक लगाता है और जेल गेट की ओर वह जाता है। वह हवलदार को जेल गेट की ओर जाते हुए देखता रहता है, उसके मन में एक जिज्ञासा छटपटाने लगती है। इतनी रात गए आखिर कौन आ रहा है? आज की स्थिति में तो किसी को कभी भी अन्दर पहुँचा दिया जा सकता है···। जेल के भीतरी फाटक के चरमराने की आवाज़ उसके कानों में पड़ती है। फाटक खुलता है। एक लम्बे कद का आदमी अन्दर दाखिल होता है। उसके पीछे-पीछे हवलदार चलता है। फाटक बन्द हो जाता है। अब हवलदार आगे हो गया है और लम्बे कद का वह आदमी पीछे। हवलदार तेरह नम्बर वार्ड की ओर बढ़ता चला आ रहा है। उसे फिक्र होती है। वह आदमी कौन हो सकता है जिसे हवलदार उसी के वार्ड में ले आ रहा है? वह जल्दबाज़ी में लालटेन की घुण्डी घुमाता है। रोशनी तेज हो जाती है। आदमी खिड़की के सामने से गुज़रा है तो वह उस पर गौर करता है। लम्बे कद के आदमी ने दाढ़ी बढ़ा रखी है। बदन पर कोई कटा-फटा कपड़ा ओढ़ रखा है, देखने में वह भिखमंगे की तरह दीखता है। वह आदमी इतनी जल्दी आँखों से ओझल हो जाता है कि न तो वह उसे ढँग से देख पाता है और न उसे समझ ही पाता है।

कर्रकराहट के साथ उसके वार्ड का लौह दरवाज़ा खुलता है। हवलदार वार्ड में टार्च की रोशनी फेंकता है। वार्ड का पहरेदार बन्दी, हरिया, उठकर बैठ जाता है। हरिया बीससाला बन्दी है। उसके वार्ड की पहरेदारी की ज़िम्मेदारी उसी की है। वार्ड की खिड़कियों की छड़ें सही सलामत रहें,

कोई बन्दी आत्महत्या न करे, आपस में कोई मारपीट नहीं करे, कोई बन्दी भागने की कोशिश नहीं करे, ये सारी ज़िम्मेदारियाँ हरिया की हैं। यदि कोई बन्दी, सरकार और जेल प्रशासन के बारे में कोई गुप्त बात करे, कोई अनशन की तैयारी करे, कोई गुप्त चिट्ठियाँ लिखे, कोई जेल मैनुअल के खिलाफ कोई योजना बनावे, हरिया को इन सभी बातों की जानकारी जेलर को देनी होती है। हरिया देखने से बहुत खूँखार लगता है। उसकी खूनी आँखों में हमेशा ख़ौफ़ के क़तरे तैरते रहते हैं। वार्ड के इन बन्दियों के लिए हरिया प्रेत से भी ज्यादा खूँखार और ख़तरनाक है।

···कुल बारह जमा ठीक है, हुजूऽऽर···हरिया हवलदार को रिपोर्ट देता है। हवलदार टार्च की रोशनी फेंककर बन्दियों की गिनती करता है। फिर फाटक में ताला ठोकता है और बूट पटकते हुए बाहर की ओर चला जाता है।

हरिया ने उस कोरान्टिस (नया बन्दी) को दो कम्बल दिए हैं। एक बिछाने के लिए और दूसरा ओढ़ने के लिए। अभी आए बन्दी, हरिया के बगल में ही अपना कम्बल बिछा लिया है। वह हरिया के बगल में ही बैठ गया है। ठेहुनों पर केहुना देकर उसने अपनी गर्दन झुका ली है।

'किस दफे में आये हो ?' हरिया उससे पूछता है, लेकिन वह कोई जवाब नहीं देता।

'कहाँ के रहने वाले हो ?' हरिया उससे पूछता है। लेकिन वह चुप लगाए रहता है।

'कण्ठ में छेद नहीं है क्या जो···' हरिया गुस्सा में बोलते हुए पिच से खैनी थूक देता है। वह आदमी इतने पर भी गुमसुम लगाए बैठा है।

'सो जाओ, साले ! कल से चाराकल में भिड़ाऊँगा तो खुद-ब-खुद बोली निकलने लगेगी···।' हरिया धमकी के रूखे स्वर में झुंझलाते हुए कहता है। फिर वह लालटेन की घुण्डी घुमाकर रोशनी कम कर देता है और कम्बल से मुँह ढक लेता है।

यह नया आदमी उसे रहस्यमय जीव लगता है। वह खिड़की पर बैठे-बैठे ही देख रहा होता है। उस आदमी के चेहरे पर लालटेन की धीमी रोशनी पड़ रही होती है। आदमी चिन्तित मुद्रा में सिमटकर बैठा हुआ है।

खिड़की पर बैठे-बैठे उसका मन ऊब गया है। वह अपने बिस्तर की ओर बढ़ता है। अभी आए कोरान्टिल पर वह नज़र फेंकता है। सोचता है, पूछूँ तो, कि कौन है और किस जुर्म में जेल आया है। वह उसके करीब जाता है। उसे चूमने लगता है। कुछ पल तक उसके पास ही खड़ा रहता है। लेकिन उसके खड़ा रहने की कोई प्रतिक्रिया उस आदमी पर नहीं होती है। वह उससे पूछता है। 'तुम किस जुर्म में आए हो भाई ?' लेकिन जवाब में वह केवल अपनी गर्दन ऊपर उठा भर लेता है। बोलता कुछ नहीं। 'मैं भी एक वन्दी हूँ, ठीक तुम्हारी तरह···एक-दूसरे के बारे में हम जानेंगे नहीं, तो फिर साथ-साथ रहेंगे कैसे ?' वह फिर उस आदमी से पूछता है, आदमी के चेहरे के भाव वदलते हैं। उसका गला हकलाता-सा है। वह सोचता है कि आदमी अब कुछ-न-कुछ जवाब देगा। लेकिन, वह कोई जवाव नहीं देता। केवल उसे देखता भर रह जाता है। उसे अजीब लगता है, यह आदमी कुछ बोलता क्यों नहीं, उसकी समझ में नहीं आता। वह अपने बिस्तर पर चला आता है। कम्बल से मुँह ढक लेता है। सोने की कोशिश करने लगता है। लेकिन मानसिक ऊहापोह के साथ ही खटमलों की भाग-दौड़ की और मच्छरों की भनभनाहट के कारण उसकी आँखें लगती ही नहीं। उसका दिमाग फिर इधर-उधर की बातों में भटकने लगता है···।

थोड़ी ही देर में वह फिर उठकर बैठ जाता है। मन बुझाने के खयाल से बिस्तर के सिरहाने से अपनी फाइल निकाल लेता है। उसके फाइल में कोई भी आपत्तिजनक चीज़ नहीं है। उसकी फाइल को साथ लाते समय पूरी तरह से जाँच कर ली गई थी। फाइल में उसकी कुछ स्वरचित कविताएँ थीं, कुछ अखबारों की कतरनें थीं और किताबों से काटकर निकाली गई एक तस्वीर थी। वह अपनी फाइल में पूरी तरह से खो जाता है। तस्वीर को निकालकर एक ओर कम्बल पर रख देता है और कविताओं को दुहराने लगता है, फिर अखबारों की कई कतरनों पर वह हल्की दृष्टि उलटता जाता है। अखबार की एक कतरन पर अचानक उसकी दृष्टि गड़ जाती है। वह पाँच नवम्बर उन्नीस सौ चौहत्तर के 'प्रदीप' दैनिक की एक लम्बी कटिंग होती है। करीब दो साल पहले उसने अखबार से इसे काटकर रख लिया था। इस कतरन में एक चित्रकार की व्यथा-कथा प्रकाशित की

गई थी । उसका नाम मानिक उस्ताद था । वह जाति का कुम्हार था । गाँव में वह कुम्हारी के काम किया करता था । उसकी एक पत्नी भी थी । एक बच्चा भी था । पत्नी जब तक जिन्दा थी, कुम्हारी के काम में उसे कोई दिक्कत नहीं होती थी । मानिक उस्ताद चाक पर माटी के बर्तन तैयार किया करता था । भट्टी जोड़कर उन्हें पकाता था और उसकी पत्नी मनिया गाँव के मालिकों के यहाँ उन्हें बेच आती थी । हफ्तेबारी मेले में भी उसके बर्तन धड़ल्ले से बिकते थे । मानिक उस्ताद चूँकि बोल नहीं सकता था, अस्तु वह बर्तनों को बेचने नहीं जाया करता था । अलबत्ता, पूजा के दिनों में सरस्वती और दुर्गा देवी की प्रतिमाएँ गढ़ने के लिए उसे पड़ोसी गाँवों में जाना पड़ता था । उसकी पत्नी मनिया, उसकी मज़दूरी तय कर देती थी और वह गाँवों में जाकर प्रतिमाएँ गढ़ा करता था । फुर्सत के दिनों में मानिक उस्ताद स्थानीय मेलों के लिए खिलौने बनाया करता था, उन्हें रंगता था और मानिक उस्ताद के हाथों से गढ़ी गई मूर्तियों और खिलौनों की अच्छी साख बन गई थी । उसकी साफ़-सुथरी कला की सभी दाद दिया करते थे । मानिक उस्ताद के हाथों बने खिलौने औरों की अपेक्षा महँगे कीमत पर बिका करते थे ।

मनिया के मर जाने के बाद भी मानिक उस्ताद गाँव में रह सकता था । यह बात तय थी कि उसके और उसके बेटे के पेट पर आफत नहीं आती । अब तो उसका बेटा सोमरूआ भी किशोर हो चला था । उसके कामों में हाथ बँटा सकता था और ग्राहकों से मोल-तोल कर सकता था । काम चल जाने की स्थिति थी । फिर भी, मानिक उस्ताद गाँव में नहीं रुका । मनिया उसकी जान थी । वह मर गई तो मालिक लोग उसकी जुबान नहीं होने का नाजायज़ फायदा उठाने लगे । उधार कभी लौटता नहीं था । उल्टे ऊपर से गाली-गलौज भी सहना पड़ता था । मानिक उस्ताद की भावना को ठेस पहुँचती थी और उसके हाथ की इल्म कुण्ठित होती जा रही थी । उसे अपने गाँव से घृणा हो गई थी और सोमरूआ को लेकर वह शहर चला आया था । शहर वह खाली हाथ आया था । माटी और हाथ यही दो पूंजी थे । मनिया जो दो-चार पैसे रख गई थी, वह उसके किरिया-करम में ही ख़त्म हो गया था । उसे अपनी चिन्ता कम ही थी । सोमरूआ के लिए वह

परेशान रहा करता था। उसने चिरैयाटाँड़ पुल के नीचे रेलवे लाइन से थोड़ा हटकर, अपना डेरा जमा लिया था। वह सोमरूआ को साथ लेकर सुबह तड़के ही निकल जाता था और पटना स्टेशन के करीब, महावीर स्थान की चिकनी फर्श पर खड़िया और गेरू और कोयले की सहायता से देवी-देवताओं की तस्वीरें बनाया करता था। बजरंग बली के दर्शन के लिए जुटी भक्तों की भीड़ उसकी बनाई तस्वीरों पर फूल-मालाएँ और पैसे चढ़ाया करती थी। तस्वीरें इतनी मनमोहक और साफ उतरती थीं कि बगल से गुजरने वाले पल-भर रुककर उसे देख ही लेते थे। तस्वीरों पर फेंके गए इन्हीं पैसों में से उसे एक अठन्नी ट्राफिक पुलिस वालों को और एक अठन्नी एक मन्दिर के पण्डा जी को देना पड़ता था। बाकी जो पैसे बचते थे, उससे दोनों बाप-बेटे की परवरिश चल जाया करती थी।

चिरैयाटाँड़ पुल के इलाके के अधिकांश उसे जान गए थे। पुल के सामने के खण्डहरनुमा मकान में जो कुली और पल्लेदार रहा करते थे, वे उसे तहेदिल से मानते थे। पुल के विशालकाय खम्भों पर मानिक उस्ताद ने एक-से-एक बढ़कर तस्वीरें उतारी थीं। करीब-करीब पुल के सभी पाये आकर्षक चित्रों से भरे पड़े थे। देवी-देवताओं की तस्वीरें, नेताओं के भव्य चित्र और मनमोहक दृश्य···रेलवे पटरियाँ हेलकर शॉटकट रास्ते से आने-जाने वाले लोग, पायों पर बनी इन बेमिसाल तस्वीरों को नज़रन्दाज नहीं कर सकते थे।

उस दिन उसे चित्र-प्रदर्शनी लगाने नहीं जाना था। बिहार बन्द का आह्वान था और दूकानें बन्द होने वाली थीं। रेलवे, यातायात और जन-जीवन सब कुछ ठप्प किया जाने वाला था। ऐसी स्थिति में प्रदर्शनी लगाने से क्या लाभ, जब लोगों को घर से निकलना ही नहीं था। वह उस दिन खड़िया, गेरू और कोयले के टुकड़े उठाकर एक पाये को सजाने में लग गया था। उसका सोमरूआ कुलियों और पल्लेदारों के बच्चों के साथ कच्ची राह पर खेलने में मशगूल रहा था···चिरैयाटाँड़ पुल का दृश्य···पुल के नीचे से गुजरती हुई ट्रेन और शाटकट रास्ते पर आते-जाते लोग···दृश्य बहुत ही साफ उतर रहा था। वह दृश्य बनाने में इतना मशगूल हो चुका था कि उसे इस बात का पता ही नहीं चला कि उससे थोड़ी ही दूरी पर क्या कुछ

हो रहा था। और अचानक जब उसका ध्यान टूटा था, तब तक सब कुछ हो चुका था। रेलवे की पटरी पर हजारों की भीड़ जुट आई थी और रेलवे यातायात ठप्प कर दिया गया था। एक ओर पुलिस वालों का भारी जमाव था। क्षण-भर के अन्दर ही वह काँप गया था और भागकर पाये के नीचे दुबक गया था। अन्धाधुन्ध गोलियाँ बरसने लगी थीं और लाशें पटरियों पर बिछती गईं थीं। लाशें घसीटी जाने लगी थीं और वातावरण आतंकमय हो गया था। त्राहि-त्राहि मच गई थी। केवल चीख-पुकार ही सुनाई पड़ रही थी। घण्टे-भर बाद जब चारों ओर सन्नाटा छा गया, तो वह पुल के नीचे से निकला था। सोमरूआ की घसीटती हुई लाश देखकर वह वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा था। मानिक उस्ताद को बेहोशी के दौरे पड़ते रहे थे। कुली और पल्लेदार, उसे अपने टूटे-फूटे मकान में ले आए थे और उसके मुँह पर पानी के छींटे देते रहे थे। वह बार-बार चीखने की कोशिश में बेहोश हो जाया करता था। दो दिनों बाद अखबारी नुमाइन्दे उसके पास पहुँचे थे और जानना चाहते थे कि मानिक उस्ताद इस घटना के लिए किसे जिम्मेदार मानता था···सरकार को, भीड़ को या मौजूदा व्यवस्था को···? मानिक उस्ताद ने कोई प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की थी और वह अपनी लाल-सुर्ख आँखों से आँसू बहाता रह गया था। अखबार वालों ने मानिक उस्ताद का पूरा इण्टरव्यू प्रकाशित किया था और उसने उसकी कतरन काटकर रख ली थी। और आज फाइल की चीजें उलटते-पलटते, उसे मानिक उस्ताद का दर्द सालने लगा था। मानिक उस्ताद के बारे में तरह-तरह की बातें सोचते-सोचते, पता नहीं, उसकी आँखें कब लग गई थीं।

सुबह हरिया ने उसे झिझोड़कर जगाया। वह जेल गेट की ओर आँख मिचते हुए भागा था। उसके बाबूजी उससे मिलने आए थे। खुफिया विभाग के साहेब ने उसे अपने पिता से मिलने के लिए बुलवाया था। खुफिया के साहेब के सामने ही वह कुछ देर तक अपने बाबूजी से बातें करता रहा था। घर-परिवार की बातों के बाद, उसके बाबूजी ने उससे एक विचित्र घटना का जिक्र किया। उन दिनों महानगर में एक हंगामा मचा हुआ था। कोई आदमी था, जो नगर के फुटपाथों और नुक्कड़ों पर रात-बिरात रोमांचक तस्वीरें बनाकर लापता हो जाया करता था। उन

दृश्यों को देखने के लिए सैकड़ों-हजारों की भीड़ जुट जाया करती थी। सड़कों पर खोदी जाने वाली उन तस्वीरों को लेकर महानगर की पुलिस परेशान थी। प्रशासन तबाह था। उनके लाख कोशिशों के बावजूद दृश्यों को जमीन पर उतारने वाला आदमी हाथ नहीं लग रहा था।

देश में आपातकाल की घोषणा होने के साथ ही साथ उस आदमी ने अपनी हरकतें शुरू कर दी थीं। एक सुबह, बिहार विधान सभा के मुख्य द्वार की सड़क पर, ठीक शहीद चबूतरे के सामने सैकड़ों की भीड़ जुट आई थी। सड़क के बीचों-बीच, एक वृहद् आकार का जीवन्त दृश्य बना हुआ था। उस दृश्य को दर्शक आँखें फाड़-फाड़कर देखते रहे थे। दृश्य बड़ा ही रोमांचक था। उसे देखने ही मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते थे। इतना जीवन्त दृश्य तो कभी किसी ने देखा तक नहीं। दृश्य उमड़ आई भीड़ की सम्वेदना को सीधे तौर पर छू रहा था। खड़िया, गेरू और कोयले के टुकड़ों का यह कमाल देखकर लोग विस्मय में पड़ गए थे। लोग सड़क की इस तस्वीर को देखने में इतना अधिक मशगूल हो गए थे, कि उन्हें इस बात का ज़रा भी ख्याल नहीं रह गया था, कि मौजूदा हालात में आँखें खोलकर सरेआम खड़ा रहना, एक संगीन जुर्म था। भीड़ उस दृश्य को देखते रहने के लिए धकुमपेल करती रही थी।

शहीद चबूतरे की चिकनी सड़क पर कुरुक्षेत्र का महाभारत छिड़ा हुआ था, विधान सभा भवन का आंशिक दृश्य···छात्र-नौजवानों की जमघट··· नारे लगाने की मुद्रा में उनके खुले हुए मुँह और तनी हुई मुट्ठियाँ···पुलिस और फौज का जमाव···उनकी उठी हुई लाठियाँ और तनी हुई बन्दूकें··· जमीन पर धराशायी हो गए लोगों की छाती से चिपकी फौजियों की बूटें··· घिसटती हुई लाशें···लोगों के चेहरों पर खौफ और आतंक की रेखाएँ··। दृश्य के नीचे टेढ़ी-मेढ़ी लिपि में लिखा एक वाक्य···१८ मार्च, चौहत्तर की एक याद···इस दृश्य को देखकर पटना के लोगों की आँखों के सामने अट्ठारह मार्च, सन् चौहतर का खौफ और आतंक ताजा हो गया। पटना की छाती पर दो-तीन साल पहले का जो जखम भरता गया था, वह फिर से रिसने लगा था।

सूचना मिलते ही पुलिस यानें आई थीं। लाठियाँ खड़खड़ाकर भीड़ को

तितर-बितर कर दिया गया था। जिन लोगों के दिलो-दिमाग पर वह दृश्य अंकित हो गया था, उनके दिलो-दिमाग को साफ करना सबसे अधिक ज़रूरी समझा गया था और इस लिहाज़ से शहर के हर सभ्य दीखने वाले आदमी का पीछा किया गया था। दो-चार लोग जहाँ भी बातें करते दीख जाते थे, उन्हें खदेड़ दिया जाता था।

अपराधी को गिरफ्तार करने के लिए पुलिस परेशान थी। प्रशासन तबाह था। सूचना दिल्ली भेज दी गई थी। महानगर में पूरी चौकसी बरती जा रही थी। फौजियों की गश्त तेज कर दी गई थी। खुफिया विभाग को पूरी तरह सतर्क कर दिया था। अब सम्पर्क विभाग इस बात की खुली घोषणा कर रहा था कि अराजकता फैलाने के उद्देश्य से किए जा रहे किसी भी षड्यन्त्र के विरुद्ध महानगर की जनता एक होकर लड़े। दूकानों एवं मकानों के मालिकों को इस बात की नोटिस दे दी गई थी कि वे अपने घरों एवं दूकानों के सामने पहरे बैठा दें ताकि किसी के घर-दूकान के सामने ये तस्वीरें न बनें। अखबारों को इस बात की सख्त हिदायत दे दी गई थी कि वे चित्र और चित्रकार सम्बन्धी कोई भी खबर नहीं छापें। 'अनुशासन ही देश को महान बनाता है' जैसे सूत्र वाक्यों को जोर-शोर से प्रचारित किया जा रहा था।

इतनी सावधानियाँ बरती जाने के बावजूद अगले ही हफ्ते फिर महानगर में जोरों की सरगर्मी फैली थी। जिसे जहाँ खबर मिली, वह महेन्द्रूघाट की ओर भागा। रिक्शा, स्कूटरों की कतारें लग गईं। पहले जो घाट की सुबह वाली स्टीमर आई तो हजारों यात्री वहीं घण्टों जमे रहे। भीड़ के बदन में सनसनाहट दौड़ गई थी। लोग भौंचक थे उनके चेहरे के रंग तेजी के साथ बदलते रहे थे। लोग डर भी रहे थे और उबल भी रहे थे।

महेन्द्रूघाट की चिकनी फर्श पर झकझोर देने वाला एक वृहद् चित्र बना था।···गया विष्णुपद का मन्दिर···लाठी भाँजते हुए फौजी···बन्दूकें चलाते हुए दस्ते···यानों पर लदती लाशें···और फल्गू नदी के तट पर सामूहिक रूप से दफनाये जाते ठण्डे बदन···चित्र के नीचे लिखा एक वाक्य···गया काण्ड के शहीदों की याद में···।

इस बार भी पुलिस आई! आफिसर आए। खुफिया के लोग जुटे।

भीड़ को तितर-बितर किया गया। पानी की बाल्टियाँ उड़ेली गईं। रिक्शा-ताँगा वालों और कुलियों पर बेंतें बरसाई गईं, फिर शुरू हुई तहकीकात। लेकिन कुछ भी पता नहीं लग सका कि कौन-सा आदमी कब इन तस्वीरों को जमीन पर उतारता है और कब कैसे लापता हो जाता है। यह बात तो तय हो चुकी थी कि इन दृश्यों को एक ही आदमी रेखांकित करता है। लेकिन, वह कौन है, क्या है, और क्यों ऐसा करता है, यह पता लगना मुश्किल ही बना रहा।

महीने में कम-से-कम तीन-चार ऐसे हादसे हो रहे थे। सुबह तड़के ही यह खबर लू की लपटों की तरह महानगर भर में फैल जाती और लोगों का हुजूम इकट्ठा हो जाता। भीड़ पहुँचती, पीछे-पीछे पुलिस पहुँचती। भाग-दौड़ मचाती। हँगामें खड़े होते। आम जनता का अनुशासन भंग होता। समय की बर्बादी होती। उत्पादन घटता। देश की प्रगति में बाधा पड़ती •••जनता का मन सहकता, आँखें खोलकर चलने की बुरी लत लगती। यह सब हो रहा था, चित्रों के कारण•••

पूरा प्रशासन तबाह हो रहा था। आफिसरों की गर्दनों पर तलवारें दिल्ली की ओर से लटकती आ रही थीं। सबके जी पर आफत पड़ी हुई थी। बेचैन पुलिस रोज दो-चार जगहों पर छापे डालती, दो-चार अनजान लोगों को पीटती और दस-बीस लोगों को गिरफ्तार करती थी। फिर भी चित्र बन रहे थे। कभी जी० पी० ओ० के मैदान में, कभी लॉन के चबूतरे पर, कभी किसी सिनेमा हॉल के अगवारे पर, कभी गोलघर की दीवारों पर, कभी श्मशान घाट के खुरदुरे फर्श पर, कभी एम० एल० ए० फ्लैट की मुख्य सड़क पर तो कभी किसी मिनिस्टर के क्वाटर के सामने अगवारे पर, कभी आरथोडेक्स चैम्बर के बरामदे पर तो कभी किसी रेलवे गुमटी पर। कहीं-न-कहीं तस्वीरें लगातार बनती रही थीं। उनके बनने-बिगड़ने का क्रम टूट नहीं रहा था।

इन तस्वीरों के जरिए पटना की सड़कों पर जनआन्दोलनों का जो इतिहास खोदा जा रहा था, इस क्रूर आपात्काल के बावजूद इसकी गूँज चारों ओर थी। औरों की तो बात छोड़ भी दी जाय, महानगर के वे बुद्धि-जीवी लोग, जो अपनी सुविधाओं के बदले खामोश रहने के लिए नुकुड़ों पर

जो जमघट लगाते थे, अब वे भी सुगबुगाने लगे थे।

यह बड़ी ही ख़तरनाक बात थी। पुलिस और प्रशासन की लाख चौकसी के बावजूद चित्रकार बन्दी नहीं बनाया जा सका था। लाज और शर्म की बात थी। यह बात तय थी कि यदि चित्रकार इसी तरह से प्रशासन की आँखों में धूल झोंकता रहा तो महानगर की जनता में देश-प्रेम और अनुशासन नाम की कोई चीज़ नहीं रह जाएगी। इसलिए, अब कड़ा रुख अपनाया गया। चित्रों को देखने के जुर्म में नगर के भिन्न-भिन्न हिस्सों में सैकड़ों लोग गिरफ्तार किए गए। अनेकों मकान एवं दुकान-मालिकों की पिटाई की गई, अनेकों पर देश-द्रोह के आरोप में जब्त कुर्क का वारण्ट किया गया। सैकड़ों की जेल में ही नसबन्दी कर दी गई ताकि उनकी विद्रोही बुनियाद कभी नहीं पनप सके।

एक दिन वह सरेआम चित्र बना रहा था। दिन-दहाड़े। मिनट के मिनट में यह सूचना महानगर के हर कोने में फैल गई थी। महानगर में हलचल मच गई थी। देखते-ही-देखते महावीर स्थान के अगवारे पर हजारों की भीड़ इकट्ठी हो गई थी। ट्रेफिक जाम होने लगी थी। चित्र और चित्रकार को देखने के लिए लोग जूझने लगे थे। चित्रकार दृश्य को जमीन पर उतारने में मशगूल था। वह बहुत तेजी से खड़िया, गेरू और कोयले के रंग भर रहा था। उसे भीड़ की कोई चिन्ता नहीं थी। उसे और किसी भी बात की फिक्र नहीं थी। बहुत जल्दी में था। वह आज एक बड़ा ही जीवित और रोमांचक दृश्य उतारने में व्यस्त था।

चित्रकार ने आज एक अभूतपूर्व तस्वीर उतारी थी। दृश्य में एक बड़ा-सा महल है···महल के विशाल हॉल में देश की साम्राज्ञी राजसिंहासन पर विराजमान है···सेठों और चाटुकारों से वह घिरी हुई है···साम्राज्ञी के हाथों में एक मोटा-सा ग्रन्थ है·· ग्रन्थ पर 'नया संविधान' शब्द लिखा हुआ है···संविधान के पन्ने खुले हुए हैं···संविधान ग्रन्थ के मुख पृष्ठ पर एक कँपा देने वाला दृश्य रेखांकित है···रेलवे पटरियाँ···उठी हुई बन्दूकें···धसकती लाशें···लहूलुहान चेहरे लिए भागते लोग···और एक फौजी की बन्दूक की संगीन के नोंक पर टँगा एक फटेहाल बालक···। संविधान ग्रन्थ के मुख पृष्ठ को देखकर साम्राज्ञी मुस्करा रही है और उसके राजसिंहासन के नीचे आग

की तिल्लियाँ सुलग रही हैं···। एक ओर चित्रकार ने एक वाक्य लिख दिया था। मैं गूँगा हूँ···मेरी जुबान नहीं है···। मेरा एक बेटा छिन गया है··· मुझे कुछ बहादुर बेटों की ज़रूरत है···। कृपा मेरी सहायता करें···।"

पुलिस आई थी। लेकिन इस बार न भीड़ भागी और न घबराई, लोग अड़े रहे। लोग चित्रकार को सम्मान की दृष्टि से देखते रहे। कुछ लोगों ने चित्रकार के प्रति सहानुभूति दिखाई। कुछ लोगों ने चित्रकार को कहा कि वह अब भाग जाय वरना पुलिस उसे गिरफ्तार कर सकती है। कुछ नौजवान चित्रकार का बेटा बनने को तैयार हो गए और पूरी भीड़ उसकी सुरक्षा में ज़बरदस्त मोर्चाबन्दी करके खड़ी हो गई थी। वह तनिक भी नहीं घबराया और न उसने भागने की ही कोशिश की। वह अपना जुबान रहित मुँह बनाए, नारे लगाने की मुद्रा में आकाश की ओर मुट्ठी उठाये, अटल विश्वास के साथ अड़ा हुआ था। उसके मुँह से आवाज़ें तो नहीं निकल रही थीं, लेकिन उसके चेहरे के बदलते भावों को पढ़कर अधिकांश लोग यह समझ रहे थे कि वह क्या कहना चाहता था।

पुलिस उसे गिरफ्तार करने के लिए आगे बढ़ी। कुछ लोगों ने पुलिस का प्रतिवाद किया। उसे क्यों गिरफ्तार कर रहे हो?···उसके चित्रों से तुम्हारा क्या बिगड़ता है?

'इसे गिरफ्तार करना इसलिए ज़रूरी है, ताकि लोग इस बात को समझें कि ऐसे अराजक चित्र बनाना और अपने को गूँगा कहना कितना संगीन जुर्म है और इस अपराध में किसी को कोई भी सज़ा दी जा सकती है···।' एक आफिसर ने तपाक से कहा। कुछ सभ्य लोग उससे बतियाने लगे। उसने कहा—'एकदम ऊपर से ही आदेश आया है, दिल्ली से···इसमें हम क्या कर सकते हैं?' भीड़ को तितर-बितर करने के लिए लाठियाँ खड़-खड़ाई गईं। लेकिन कुछ ऐसे नवयुवक थे जो चित्रकार का साथ छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे और वे लगातार पुलिस का प्रतिरोध कर रहे थे। उन्हें चित्रकार के साथ ही गिरफ्तार कर लिया गया था।

अपने बाबूजी से मिलकर जब वह अपनी वार्ड में लौटने लगा, तो उसे रात आए आदमी की याद हो आई। रात उसके बारे में कुछ जान नहीं पाया था। वह तेजी से वार्ड में घुसा, अचानक दंग रह गया। रात आया

आदमी वार्ड की फर्श पर एक तस्वीर बना रहा था। उसके हाथ में वह तस्वीर थी, जिसे रात फाइल से निकालकर उसने अलग रख दिया था और वह तस्वीर उड़ते-पड़ते उस आदमी के हाथ लग गई थी। वार्ड की खुरदुरी फर्श पर मार्क्स-लेनिन की विशालकाय तस्वीर बड़ी ही जीवन्त उतरी थी। यह तस्वीर बनाते उस नए बन्दी को देख उसे अखबार की कतरन वाले मानिक उस्ताद की याद आ गई। उसने अनुमान लगाया कि मानिक उस्ताद इसी तरह का आदमी रहा होगा। फिर उसका दिमाग बाबूजी द्वारा बताई घटना पर जा रुका। कतरन वाला मानिक उस्ताद बिना जुबान का था···पटना की सड़कों पर तस्वीरें बनाने वाला चित्रकार भी बिना जुबान का था और···रात उस आदमी ने कोई जवाब नहीं दिया था। क्या यह भी बिना जुबान का आदमी है? उसने पूछा—तुम वह मानिक उस्ताद तो नहीं जिसका बेटा पुलिस की गोली से मारा गया था और जो पटना की सड़कों पर आन्दोलनों का इतिहास गढ़ता रहा था···? जवाब में उस आदमी ने बस, अपना मुँह खोल दिया था। उसे समझते देर नहीं लगी। वह स्वयं को रोक नहीं पाया। चित्रकार से वह लिपट गया।

आज सोम का दिन था। अचानक जेलर आ गया। देर-सवेर उसे आना ही था। आज कुछ पहले ही आ गया था। वह रात आए कोरान्टिस बन्दी, जिस पर खतरनाक होने का आरोप था, को देखने आया था। अधिक सुरक्षा के ख्याल से उसे जिला जेल से तबादला करके केन्द्रीय जेल में भेजा गया था। उसके साथ जो कागजात आए थे, उन्हें पढ़कर जेलर सब कुछ जान गया था। उस जेल में वह अपने साथ गिरफ्तार हुए लड़कों को विद्रोह भड़काने वाली तस्वीरों को बनानां सिखाया करता था। यही कारण था, कि उसे उन लड़कों से अलग कर दिया गया था। वार्ड की फर्श पर उसे तस्वीर बनाते देख जेलर की आँखें चढ़ गईं। वह गरजा और तस्वीर को अपने जूते के तलवे से मिटाने के लिए आगे बढ़ा। लेकिन इसके पहले कि जेलर के जूते का तलवा तस्वीर के सीने पर पड़ता, वह कोरान्टिस तस्वीर पर लोट गया था। और जेलर का जूता उसके कलेजे पर चक्कर काट गया था। चित्रकार चीखा था और उसके मुँह से खून का लोथड़ा निकलकर तस्वीर पर पसर गया था। चित्रकार की आँखें पल-भर के लिए बेचैनी से घूमीं थीं और फिर

शान्त हो गई थीं। यह सब पल-भर में ही हो गया था और वह भौंचक्का होकर सब कुछ देखता रह गया था। इसके पहले कि चित्रकार की लाश उठाई जाती उसने सिर झुकाकर ससम्मान कहा था—'अलविदा, कामरेड मानिक उस्ताद···अलविदा।' और फिर वह फर्श पर पसरते लहू से तस्वीर के रंग को, सदियों तक के लिए पक्का बनाने की खातिर अपनी अंगुलियाँ घुमाने लगा था।

० ०

मुद्राराक्षस

मेरी डायरी के अजीज पन्नो !

एक लम्बे अरसे बाद, मैं तुम तक पहुँच पाने में सफल हो पाया हूँ।

जिस दिन से, जिस क्षण से, तुम लोगों से अलग हुआ, तभी से तुमसे फिर से जुड़ जाने के लिए बेचैन रहा। बहुत प्रयत्न किए। लेकिन, हर बार तुम तक पहुँचना जटिलतर होता गया।

मित्रो, मैं तुमसे अलग रहकर कितना तबाह हुआ। क्षण-क्षण, हर निमिष, कितनी कठिनाई से बिताए···हर क्षण, एक वर्ष की तरह बिताया। पूछो, क्यों, कैसे और कहाँ··?

मुझे वह तारीख भी याद है, सोलह फरवरी, चौहत्तर, दिन रविवार। प्रातः नौ बजे, कालेज जाने के लिए तैयार हो रहा था। तभी डाकिया तार दे गया। फाड़कर देखा। बाबूजी का था···शीघ्र आओ···अंग्रेजी में एक छोटा-सा वाक्य था। मुझे बहुत ताज्जुब हुआ बाबूजी का तार देखकर। मेरे जीवन में बाबूजी का मेरे नाम यह पहला खत या तार था।

मेरे जहन में कई सवाल एक साथ हलचल मचाने लगे थे। सोचने लगा···क्यों जाऊँ मैं? आज उन्हें अचानक मेरी क्या ज़रूरत आ पड़ी जो तार ठोक दिया? जिस दिन पढ़ाई के पैसे देने थे, उसी दिन बदले में भद्दी-भद्दी गालियाँ देते थे। वही गालियाँ जो कभी थाने में अपराधियों से सलूक करते समय दिया करते थे—देखूँगा जो पढ़कर नवाब बनोगे···! उनकी अनुमति न मिलने के बावजूद मैं पटना के लिए चल पड़ा था, तो उन्होंने कहा था—खबरदार, जो फिर कभी घर में पाँव डाले···टाँगें काट लूँगा···।

मैं नहीं लौटा घर, तीन वर्षों तक नहीं लौटा। यह सोच-सोचकर भी कि माँ दिन-रात रो-बिलखकर बीमार पड़ गई होगी, छोटी बहन तुलसी

रोज शिव बाबा पर जल चढ़ाकर कहती होगी—दुहाई झारखंड बाबा की, मेरे भईया को घर लौटा दो···माँ की ममता मुझे बुरी तरह आहत करती थी, तुलसी का प्यार किसी चुम्बकीय शक्ति की तरह मुझे गाँव की ओर खींचता था। लेकिन ऐन मौके पर मेरे अन्दर का समन्दर साथ दे देता था। आँखें झर जाती थीं और मैं तनाव और शोक-पीड़ा से मुक्त हो जाता था।

तुम तो जानते हो मेरे प्रिय पन्नो ! वे बहुत कठिनाई के दिन थे। न कहीं खड़ा हो पाने की जगह और न पेट भरने के लिए जेब में पैसे। पटना में इधर-उधर मारा-फिरा, चलकर रोज अस्थायी डेरा बसता और उजाड़ता चलता था। कभी बाँस घाट के उस खुरदुरे फर्श वाले चबूतरे पर, जहाँ प्रतिदिन मुर्दे जलाए जाते थे। तो कभी महेन्द्रूघाट की छत पर, कभी पटना स्टेशन के सामने वाले पार्कनुमा गोलम्बर की भीगी घास पर और कभी लॉन में खुले आकाश के नीचे।

नौकरी के लिए इस दफ्तर से उस दफ्तर मारा-मारा फिरता था, थक गया था। अखबार वाले भी 'सिक्युरिटी-मनी' की माँग करते थे। सिनेमा टिकट ब्लेक करना एक अच्छा धन्धा हो सकता था। लेकिन उतने पैसे होते तो अखबार ही क्यों नहीं बेचता।

वे अन्तिम तीन दिन कैसे बीते, न पूछो यारो। जेब मुझे कटु शब्दों में उलाहना देने लगती थी···मैं तीस पैसे की तीन रोटियाँ महावीर स्थान के फुटपाथ पर से खरीदता था और खाकर मन्दिर में जाकर पानी पी लेता था। क्यों, उन दिनों मन्दिर के देवता में मेरी आस्था नहीं रह गई थी। मन्दिर में केवल पानी पीने जाता था।

चकाचौंध भरे उस महानगर में मुझे प्रकाश की एक किरण भी दिखाई नहीं पड़ती थी। मेरे सामने दूर-दूर तक गहन अन्धकार फैला हुआ था। उस दिन तो ऐसा लगा, कि घुटने टेक देने के अलावा कोई उपाय नहीं है। मैं बहुत निराश और हताश हो गया था और सोच लिया था कि आज कोई प्रबन्ध नहीं हो पाया तो कल गाँव लौट जाऊँगा। लेकिन उसी दिन, मुझे एक नया जीवन मिल गया था।

डेयरी कॉरपोरेशन के डिपो मैनेजर ने मुझे एक नौकरी दे दी थी। तेरह नम्बर डिपो पर मुझे दूध की बोतलें बेचनी होती थीं। रोज तीन रुपये

का वेतन देता था वह। वे बहुमूल्य तीन रुपये, जो मेरे अस्तित्व को बरकरार रखने के लिए बहुत ज़रूरी थे, बहुत जरूरी···वरना मैं झुक गया होता, टूटकर बिखर गया होता।

उन्हीं तीन रुपये रोज के वल पर मैंने इण्टर में प्रवेश लिया था। किताबें खरीदीं। पेट भरा और टाँगें पसारने के लिए दो गज जमीन का जुगाड़ कर पाया था।

उन दिनों बाबूजी को मेरी कोई चिन्ता नहीं थी। कहीं तहकीकात भी नहीं की, कि मर गया या जिन्दा भी है। और उस दिन उनका तार आया—शीघ्र आओ, मेरा पता-ठिकाना उन्हें निश्चय ही मेरे गाँव के प्रोफेसर, प्रसाद बाबू ने दिया होगा। क्योंकि मैंने तो कभी भी उन्हें अपना पता नहीं बताया। तीन वर्षों में उन्हें एक भी खत नहीं लिखा था।

मेरे गाँव पहुँचने पर पूरे गाँव में हल्ला मच गया था। रमुआ आया है···रमुआ, दारोगा जी का रमुआ तीन साल बाद घर लौटा है···

माँ को देखकर मुझे झटका लगा था। पहले तो मैं उसे पहचान ही नहीं सका था। लेकिन कुछ ही क्षण बाद अनुभव किया, कि वह बुढ़िया, मेरी माँ ही थी। विगत तीन वर्ष उस पर तीस वर्षों की छाप छोड़ गए थे। जैसे, तीस वर्षों की उम्र उस पर जबरन थोप दी गई हो। उसके चेहरे पर झुर्रियों का जाल-सा बिछ गया था। अधिकांश बाल सफेद हो गए थे।

उसके पैर छुए, तो वह मूर्छित-सी हो गई। मातृत्व सह नहीं सका, संयोग और वियोग की मिश्रित पीड़ा। उसकी आँखें काफी देर तक झरती रही थीं।

तुलसी अब बड़ी हो गई थी। तीन साल पहले वह मेरी गोद में अक्सर लौट जाया करती थी। लेकिन उम्र और शारीरिक विकास का खयाल कर अब वह ऐसा नहीं कर सकती। उसने आकर मेरे पैर छुए। मेरा मन बोझिल हो गया था।

बाबूजी आँगन में आए तो मैं खटिया से उठकर खड़ा हो गया। हिम्मत नहीं हुई कि उनसे आँखें मिला सकूँ। इसके पहले कि मैं सँभलता, बाबूजी बोले—बैठ जाओ···शुष्क कठोर शब्द। झुककर उनके पैर छुए।

—आपने तार दिया मुझे? मैंने एक सीधा-सा सवाल पूछा।

—यूँही बुला लिया।

—ठीक है, मैं कल सुबह ही वापस चला जाऊँगा।

—नहीं, अभी कुछ दिन ठहरोगे···उनकी आवाज़ में सख्ती थी।

उनका सामना कर लेने के बाद माँ के पास गया। वह चारपाई पर बिना बिस्तर डाले लेटी-लेटी सिसक रही थी। मैं गया तो और फफककर रोने लगी। वह मुझसे बहुत कुछ कहना चाहती थी, लेकिन गला रुँध जाता था, रुलाई बन्द नहीं होती थी। इसीलिए, वह मुझे कुछ भी नहीं बता सकी।

मेरे बाबूजी कभी सचमुच के बाबूजी थे, जैसे सबके होते हैं! हमें लाड़-प्यार करते थे। गोद में बिठाकर क···ख···ग··घ·· पढ़ाया करते थे।

उस समय नई-नई नौकरी थी बाबूजी की, पुलिस की नौकरी। वे बेहद ईमानदार आदमी थे। लन्द-फन्द से बचते थे। रिश्वत की बात करने वालों को हवालात में बन्द कर देते थे। सच्ची रिपोर्ट पेश करते थे। कई मुद्दों पर अपने साहबों से भी लड़ जाते थे। न्याय के लिए, सच्चाई के लिए।

तब हम तीन भाई थे, मदन भाई, शामू भाई और मैं। तुलसी छोटी थी। एक भरा-पूरा खुशहाल परिवार था हमारा।

बाबूजी अपने तबादले के कारण परेशान रहते थे। एक थाने में जाकर अभी डेरा जमता नहीं था कि डेरा उखाड़ने की नौबत आ जाती थी। किसी भी थाने में तीन-चार महीने से अधिक टिक नहीं पाते थे। ऐसा केवल इसलिए होता था, क्योंकि बाबूजी अपने साहबों को खुश नहीं रख पाते थे। न पार्टी देते थे, न हुज़ूर की सलामी। बस, बात बिगड़ जाती।

एक दिन घर में कोहराम मच गया।

बाबूजी को सौ रुपयों की सख्त ज़रूरत थी। एक बंगाली लड़की को कुछ गुण्डे भगाकर लाये थे। बाबूजी ने बड़ी बहादुरी से गुण्डों को खदेड़कर लड़की को अपनी हिरासत में ले लिया था। उस लड़की को ट्रेन-किराये के पैसे देने थे। बाबूजी अपने स्टाफ के लोगों से मदद माँगकर असफल हो चुके थे। अन्ततः बाबूजी माँ के पास आए थे और माँ के गहनों की माँग

करने लगे थे। बस, इसी पर बात बढ़ गई थी। माँ अड़ गई थी और बाबूजी को फटकारती रही थी—वो देखो, छोटा दारोगा रमेश बाबू को, कमा-कमाकर कोठा पिटा लिए। एक ई साहेब हैं कि मेरे मंगलसूत्र वेचने पर तुले हैं···।

उस दिन बाबूजी की करारी हार हुई थी। हम सभी भाई-बहन माँ को समर्थन देते रहे थे। और बाबूजी की स्थिति अत्यन्त हास्यास्पद हो गई थी। उस दिन बाबूजी अपने जीवन में पहली बार खूब रोए थे।

उस दिन हमारे घर में एक बनिया प्रवेश कर गया, अपने पैर जमाने के लिए जगह बनाने लगा। जैसे-जैसे बनिया घर में जगह बनाता गया, बाबूजी घर के बाहर होते गए। और एक दिन समय आया कि उस बनिये ने हमारे घर पर पूरी तरह कब्जा कर लिया। दुख यह कि, अनजाने में हमारे परिवार के सभी सदस्य बाबूजी और बनिये के बीच की लड़ाई में बाबूजी का साथ न देकर बनिये का साथ देते रहे। हमें गाड़ी अच्छी लगती थी। कपड़े, गहने और बर्तन पसन्द आते थे, प्रसन्न रखते थे, इसलिए हम उस बनिये को पसन्द करने लगे थे, प्यार करने लगे थे···बाबूजी घर में अपेक्षित हो गए।

बनिया तभी से अपने परम्परागत काम में लग गया। उसे हर समय केवल पैसे की धुन रहती थी। केवल मुनाफे की चिन्ता उसे हर क्षण सताती थी। बस···मुनाफा····मुनाफा···मुद्रा····मुद्रा····रिश्वत····रिश्वत··· सलामी···सलामी · पैसा···पैसा···इसके अतिरिक्त उसके दिमाग में कुछ नहीं होता था।

कब्र के किनारे खड़ी बुढ़िया से बनिये ने कहा—दो सौ गिन दोगी तो तुम्हारे बेटे का नाम डाका काण्ड में नहीं दूँगा···यदि जनकिया को मेरे पास नहीं भेजती तो गुण्डे उसे उठाकर ले जायेंगे···बनिये ने बहुतों से बहुत कुछ कहा और सभी उसकी गिरफ्त में आए, बिना उसके किसी अतिरिक्त प्रयास के···।

कुछ ही दिनों में वह मालामाल हो गया। मुद्रा का राक्षस बन बैठा।

उसने पूरे परिवार को अपने ही रंग में रँग देने की भरपूर कोशिश

की। उसने मदन भाई और शामू भाई को एक रात पैसे दिए। जिस शिक्षक ने उनकी पढ़ाई के लिए दो-चार बेंत लगाए, उसे उसने थाने में बुलाकर बुरी तरह पीटा और चालान कर दिया। मदन भाई पर उसकी पूरी-पूरी परिछाँही पड़ी। वह मदन भाई को पैसे देकर शराब की बोतलें लाने के लिए शहर भेजता था। मदन भाई को जल्दी ही शराब की लत लग गई। वे जुआ भी खेलते थे और वैश्यागमन उनके लिए आम बात हो गई थी। वे एक बार माँ की सन्दूक से कुछ गहने भी उड़ा ले गए।

उस दिन मदन भाई बनिये की बोतल लाने ही शहर गए थे। लेकिन वे शाम तक नहीं लौटे और बनिया उन पर बहुत बिगड़ा। रात-भर भद्दी-भद्दी गालियाँ बकता रहा था। दूसरे दिन भी मदन भाई नहीं आए तो हम लोगों की चिन्ता काफी बढ़ गई। तीसरे दिन सुबह किसी कोठे के नीचे बहते नाले में मदन भाई की लाश मिली थी। लाश थाने में आई थी। बनिये ने मदन भाई की लाश पर कई लात लगाये और थूका। माँ, तुलसी और हम दोनों भाई, मदन भाई की लाश देखने के लिए तड़पते रहे, लेकिन बनिये ने हमें थाने तक जाने की अनुमति नहीं दी।

मदन भाई का श्राद्ध-संस्कार भी नहीं कराया उसने।

उस दिन की घटना याद कर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। प्रिय पन्नो। आज भी बहुत डर लगता है। बनिये के कारण पूरा परिवार संकट में पड़ गया था। पूरा गाँव लाठी-भाला लेकर हमारे क्वार्टर को घेरे खड़ा था। वे बनिये को भद्दी-भद्दी गालियाँ दे रहे थे और दरवाज़ा तोड़कर अन्दर प्रवेश कर जाने पर उद्धत हो आए थे। हम लोग एक कमरे में बैठकर रो रहे थे। घर में बनिया नहीं था। माँ ने हमें अपने आँचल से ढक रखा था। जैसे हमारी रक्षा का बेहतर उपाय कर रखी हो लेकिन वह उसका भ्रम था। भीड़ इतने गुस्से में थी कि कचूमर निकाल देती।

वे लोग किवाड़ तोड़कर आँगन में घुस आए थे। माँ के बहुत कहने पर भी उन्हें यकीन नहीं हुआ था और उन्होंने हर कमरे की तलाशी ली। हमें रोते देख उन्हें किसी तरह दया आ गई, वरना वे हमारे परिवार को समूल नष्ट कर जाते। अन्त में वे लौटे थे, इस प्रतिज्ञा के साथ, कि गाँव के अपमान का बदला जरूर लिया जाएगा—हिरामन बुआ की बेटी की

इज्ज़त पूरे गाँव की इज्ज़त है।

माँ दूसरे ही दिन गाँव लौट आने के लिए तैयार हो गई। बनिये की अनुपस्थिति में ही हम गाँव चले आए, बिना इस बात की चिन्ता किए, कि बनिया हमारी इस भूल के लिए हमें माफ नहीं करेगा और आतंक मचाकर रख देगा।

और अभी बहुत दिन नहीं बीते थे कि बनिया भी घर चला आया। वह सस्पेंड होकर आया था। गाँव वालों का गुस्सा उबल पड़ा था। और उन्होंने बनिये पर चौतरफा आक्रमण कर दिए थे। बनिया इस लड़ाई में हार गया था। उसके व्यवसाय का यह लाइसेंस छिन गया था, जिस लाइसेंस का दुरुपयोग करके वह गाँव वालों, गरीबों का शोषण करता था। उन्हें तबाह करता था और उनकी इज्जत-आबरू लूटा करता था।

हमें विश्वास था कि गाँव आकर बनिया फिर बाबूजी में तब्दील हो जाएगा। लेकिन यह भ्रम सिद्ध हुआ।

तुलसी ने मुझे बताया कि मुझे मेरी शादी के लिए बुलाया गया था। बाबूजी के इस सुनियोजित षड्यन्त्र के बारे में सुनकर मुझे जोरों का धक्का लगा था। बताया गया कि पहले तो शामू भाई की शादी ही तय हुई थी। शामू भाई को बाबूजी दबाव तो डाल सकते थे पर ऐसा करने से वे डरते थे। इधर नौकरी जाने के बाद बाबूजी का रुतबा दिन-ब-दिन घटता गया था। जबकि शामू भाई का प्रभाव-क्षेत्र बढ़ता गया था। शामू भाई की गाँव के कुछ ऐसे धाकड़ लोगों से अच्छी निकटता हो गई थी, जिनसे बाबूजी टकराने से डरते थे।

जब शामू भाई दो टूक जवाब दे गए, तो बाबूजी की गिद्ध-दृष्टि मुझ पर पड़ी, एक असहाय, कमजोर, टूटे और बिखरे हुए आदमी पर···और उन्होंने प्रसाद जी से मेरा ठिकाना लेकर तार ठोक दिया—कम सून।

बहुत साहस जुटाकर पटना लौटने का निश्चय किया। मेरे अज़ीज़ पन्नो, तुम तक पहुँचने के लिए कृत संकल्प था। इस बार तुलसी कहने लगी थी। भैया! हमें भी साथ लेते चलो,···नहीं तो···उसकी आँखें डबडबा गई थीं। मैं तुम तक पहुँचने के लिए चला भी, लेकिन दरवाज़े पर ही बाबूजी से सामना हो गया। वे आँखें तरेरे खड़े मिले।

मेरी बाँह पकड़कर बाबूजी मुझे अपने कमरे में ले गए और बाहर से कुण्डी चढ़ाकर ताला ठोक दिया।

तीसरे दिन जब मुझे कमरे से बाहर निकाला गया, तो मेरी नज़र बाहर देहरी में खड़े कुछ लोगों पर पड़ी थी। मैं रो-रोकर और बिना खाना खाये बहुत कमजोर हो गया था। और मुझ में चल-फिर पाने की शक्ति भी नहीं रह गई थी। जब वे मुझे बाहर ले जाने लगे, तो पीछे मुड़कर एक नज़र फेंकी। देखा, माँ और तुलसी अपनी-अपनी जगह पर फफक-फफक-कर रो रहीं थीं और मुझे निर्मिमेष आँखों से देखती रह गई थीं।

आँगन से निकालकर मुझे बाहर लाया गया। वहाँ पहले ही से एक जीप खड़ी थी। मुझे जीप की पिछली सीट पर बैठाया गया। मेरे अगल-बगल दो व्यक्ति बैठे। सामने वाली सीट पर तीन आदमी जम गए। बाबूजी आगे वाली सीट पर थे। गाड़ी चल दी थी और मुझे यह भी पता नहीं था कि मुझे कहाँ ले जाया जा रहा था।

गाड़ी अपने पूरे वेग से शहर की ओर जाती सड़क पर सरकती जा रही थी। जीप में कुल सात आदमी बैठे थे। बाबूजी के अतिरिक्त जो लोग बैठे थे। वे मुझ से सर्वथा अपरिचित थे। उनके चेहरे देखने से ही खूँखार लगते थे।

शहर के निकट के एक मन्दिर के समीप जाकर जीप रुकी थी। मुझे मन्दिर के अन्दर लाया गया था। वहाँ पहले ही से पण्डित तैयार बैठा था। उस लड़की को, जो एक कोने में घूँघट काढ़े बैठी थी, मेरे सामने लाकर विठा दिया गया। लड़की के घरवाले भी वहाँ मौजूद थे। वे सभी हमें घेर-कर चारों ओर से खड़े थे। मैं जिधर निगाह उठाता बस भौंह चढ़ी हुई होतीं। अन्ततः थककर मैं सामने बैठी लड़की पर केन्द्रित हो गया था। उस समय मेरी समझ में यह भी नहीं आ रहा था कि जो सामने बैठी थी, वह कोई लड़की थी या साठ साल की बुढ़िया···।

एक अहसास मेरे अन्दर में दूर तक जाकर मुझे बार-बार कुरेदने लगा था···तुम बँध रहे हो···तुम बाँधे जा रहे हो···तुम जकड़े जा रहे हो···।

उस रात, मेरी सुहागरात थी। एक होटल में बाबूजी ने कमरा लिया था। मुझे उस कमरे में उस लड़की के साथ ढकेल दिया गया था और बाहर

से कुण्डी चढ़ा दी गई थी।···सुहागरात मनाने के लिए।

सुहागरात मन गई। मन क्या गई, किसी तरह कट गई। चारपाई की एक छोर पर मैं दुबककर लेटा था और दूसरे छोर पर पड़ी वह लड़की मुझे टुकुर-टुकुर देखती रही थी। वह रो रही थी और मैं भी रो रहा था। वह कुछ नहीं बोल रही थी और मैं भी कुछ नहीं बोल रहा था। हमें कमरे के सन्नाटे ने बुरी तरह जकड़ लिया था। हम दोनों रात-भर अपनी-अपनी छोर पर पड़े एक-दूसरे को समझने की कोशिश करते रहे थे···लेकिन उस फासले के बीच इतनी सारी बातें, इतनी भयावह घटनाएँ मौजूद थीं कि उनसे उलझे बिना एक-दूसरे को समझ पाना कठिन था। रात-भर में हमारी आँखें सूखी नहीं, बल्कि सूज गई थीं।

बाबूजी कमरे के बाहर अपना आसन जमाये हुए थे और खाँस-खाँस-कर अपनी मौजूदगी का अहसास करा रहे थे। यह अहसास सैकड़ों काँटों के एक ही बार चुभने की पीड़ा की तरह था।

मैं यह नहीं जानता था कि वह लड़की कौन थी, कहाँ की थी और उसने मुझसे शादी करना क्यों स्वीकार किया···विद्रोह क्यों नहीं किया··· विद्रोह की बात जैसे ही दिमाग में आई कि मैं हीनभाव से ग्रस्त हो गया··· वह तो अबला है··तुम क्यों नहीं कर पाये विद्रोह···? यह सवाल मुझे अन्दर से बाहर तक झकझोर गया।

उसके बाद मैं एक मशीन बना दिया गया···एक ऐसी मशीन, जो बाबूजी की हर आज्ञा का पालन करने लगी। इस विचार से एकदम मुक्त होकर, कि क्या गलत होता है और क्या सही, यदि आदेश मिला, बैठ जाओ···तो बैठ गया···खड़ा हो जा तो खड़ा हो गया और आँखें बन्द करके सो जा, तो सो गया। वैसे ही, जैसे स्विच आन करने पर मशीन अपना काम खुद-ब-खुद करने लगती है। बाबूजी ने जैसे-जैसे कहा, मैंने वैसे-वैसे ही किया···एक मशीन की तरह।

आदमी से मशीन बनने की यह प्रक्रिया झेलना आसान नहीं है मेरे मित्रो···बहुत ही कठिन है।

शायद इसी प्रक्रिया ने मेरे अन्दर के समन्दर को सुखा दिया, उसे जलरहित खोखला गढ़ा बनाकर छोड़ दिया। कीचड़ से भरा गढ़ा। यही

कारण है कि अब मन में बवण्डर तो उठते हैं, लेकिन ज्वार-भाट नहीं आते। बूँदें नहीं छलकतीं···।

एक थी माँ, बिलकुल पगली थी। रो-रोकर आँखों को बर्बाद कर रही थी। जीवन-भर लात-जूते से पिटती रही, फिर भी सही को सही और गलत को गलत कहना नहीं छोड़ा। वह बनिये का सदा विरोध करती रही। अपनी सीमा तक उसने साथ दिया और फिर साथ छोड़कर चली गई। सदा-सदा के लिए।

माँ के प्राण उस दिन निकले, जिस दिन मुझे जबरन पिता करार दिया गया, जिस दिन मुझ पर जबरन पिता की जिम्मेदारी 'थोपी' गई। मैंने कभी भी अपनी पत्नी के साथ सहवास नहीं किया···और जब शादी के आठ महीने बाद ही एक लड़की पैदा हुई तो माँ को यह सब बर्दाश्त नहीं हुआ। तुरन्त कूच कर गई इस दुनिया से।

चलने से पहले उसने तुलसी से कान में कहा था—तुम्हें बहन पैदा हुई है रे···उसका खयाल रखना और उसने तुलसी की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा नहीं की।

जिस गाँव की वह लड़की थी, वहाँ बनिया थानेदार रह चुका था। नौकरी जाने के बाद भी वह वहाँ आता-जाता रहता था···रुपये थे···गाड़ी थी, इसलिए उसके घरवालों को बनिये का वहाँ आना-जाना बुरा नहीं लगता था। जब बनिये के कारण उन लोगों की बदनामी होने लगी तो बाबूजी ने उन्हें आश्वासन दिया था। आपकी बेटी मेरी भी कुछ लगती है···मैं कराऊँगा इसकी शादी···।

बनिया अपने काम में शत-प्रतिशत सफल रहा। वैसे यह बाबूजी की सफलता कही जा सकती है। लेकिन बाबूजी इतने निश्छल और निर्दोष थे, कि ऐसे षड्यन्त्रों की व्यूह-रचना करना उनके वश की बात नहीं थी। निश्चय ही बनिया अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए यह सब करता चला गया···।

तो मेरे साथियो। आज भी मेरे घर पर उसी बनिये का कब्जा है और मैं अपने घर के सामने ही बेघर का बनकर खड़ा हूँ···बनिया अब नहीं चाहता कि मैं या तुलसी उस घर में रहे, क्योंकि हमारे रहने से उसके कामों

में बाधा पड़ती है···रंगरेलियाँ मनाने में···गुलछर्रे उड़ाने में···

जब तक मैंने उसकी बात मानी, वह मुझे पालता रहा। जैसे ही उसके आदेश के विपरीत गया, उसने मुझे दूध से मक्खी की तरह निकाल फेंका। बनिये का यही चरित्र होता है मेरे यारो···इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

मित्रो ! इस बनिये की उपस्थिति हर जगह के लिए खतरनाक है। इसने मुझे और मेरे जैसे हजारों-लाखों को बर्बाद किया है। लूटा है···।

बनिया दिन-ब-दिन कमजोर होता जा रहा है···निश्चय ही कल मैं उसे अपने घर से निकाल फेकूँगा, ऐसा मेरा विश्वास है। बशर्ते कि तुम मेरे साथ रहो।

० ०

पराजित विजेता

तब, रामपरसाद की उम्र का ही रहा होगा, गिरधारीराम । यानी, सत्रह-अठारह साल का, छरहरे बदन वाला छः फुटा जवान, वही लम्बा उत्साह और ऊँची उमंगें, बात-बात में कुछ कर गुजरने की प्रवृत्ति । अन्याय सह नहीं सकता था । अकारण किसी की खरी-खोटी सुनने के लिए तैयार नहीं होता था । किसी की गुलामी और सलामी उसे कतई पसन्द नहीं थी । गाँव के बड़े-बड़े बाबूओं को दो टूक जवाब दे देता था । वह चहता था कि उसे 'नान्हजात' के परम्परागत विशेषण से किसी तरह मुक्ति मिले । लेकिन, यह मुक्ति तो मिलने वाली थी नहीं । इस बात को वह शुरू से ही समझता था कि मुक्ति मिलेगी नहीं, 'लेनी' पड़ेगी । लेकिन, वह स्वयं को बिलकुल अकेला पाता था । 'हरिजन टोला' के बड़े-बूढ़े आकस्मिक ख़तरे को मोल लेने के लिए तैयार थे नहीं । नए लड़के, जो गिरधारीराम के हमउम्र थे, बड़े-बूढ़ों की डाँट-डपट के प्रभाव में थे । इसलिए गिरधारीराम स्वयं को अकेला पाता था, जबकि, दूसरी ओर परम्परागत रुढ़िवादिता, धर्मान्धता एवं अन्धविश्वास को ढोती गाँव की विशाल दानवी सेना । ऊपर से उस दानवी सेना के लोगों पर 'बड़जीव' का मुहर लगता था । यह मुहर ऐसा था, जो सब जगह अपना कमाल दिखा देता था । थानेदार के थाना में वे इस मुहर के सहारे प्रवेश कर सकते थे और थानेदार की सहायता ले सकते थे, जबकि हरिजन टोली के लोग थाने में घुसकर, तिवारी बाबा जमादार के थाने को अपवित्र नहीं कर सकते थे । यानी, जिला से लेकर शहर तक सभी जगहों से वे अपने 'मुहर' के बल पर सहयोग ले सकते थे । जबकि गिरधारीराम की परिस्थितियाँ बिलकुल प्रतिकूल थीं । उनकी तरह उसके पास हरिजन टोली की कोई संगठित सेना थी नहीं । अपने

'नान्हजात' के विशेषण के कारण कहीं से उसे कोई सहयोग उपलब्ध नहीं था। उसमें आत्मविश्वास की कमी तो नहीं थी, लेकिन आन पर जान देना वह उचित नहीं समझता था। इसलिए, वह अक्सर चुप लगा जाता था···

लेकिन, रामपरसाद चुप नहीं लगाता। इसलिए, गिरधारीराम का बीस वर्षीय रामपरसाद, गाँव के लोगों की नजर पर चढ़ गया था। चाहे जदुनी के साथ बलात्कार वाली घटना हो, या गैरमजरूआ जमीन के झंझट में फगुना की पिटाई का हादसा हो, चाहे गाँव के प्राइमरी स्कूल में हरिजन टोली के बच्चों के दाखिला के प्रश्न पर, हलधर मास्टरजी के गाँव से निकाल बाहर करने का निर्णय हो या गाँव में ट्रैक्टर नहीं आने देने का विवाद हो, सभी झंझटों में रामपरसाद अपने को झोंकता चला गया, यह दूसरी बात है, कि उसे कुछ विशेष हाथ नहीं लगा और वह बड़जीवों की आँखों में काँटे की तरह चुभने लगा। मैं रामपरसाद को गिरधारीराम की 'प्रतिक्रिया' मानता हूँ। जीवन-भर तो गिरधारीराम चुप रहा। लेकिन, अन्ततः, उसने जैसी 'प्रतिक्रिया' दी, वह सबसे महत्त्वपूर्ण साबित हुई।

एक बार की घटना है कि गिरधारीराम का चाचा लकड़ी का खड़ाऊँ पहने टट्टी के लिए बहार जा रहा था। रास्ते में जगता तिवारी मिल गये। वे हलवाही से लौट रहे थे और उनके साथ हरिजन टोली का ईसरा चमार कन्धे पर हल-फार लिये बैलों की जोड़ी को हाँकता आ रहा था। जगता तिवारी ने उसके चाचा को खड़ाऊँ पहने देख लिए। उन्होंने उसके चाचा की पिटाई बैलों को हाँकने वाली चमौटी से शुरू कर दी। उनका कहना था कि गाँव की धरती की छाती पर एक चमरा खड़ाऊँ पहनकर चलने लगे, तो गाँव का सर्वनाश होना निश्चित प्रायः है और ईसरा कुछ बोला तक नहीं था। भौंचक्का होकर देखता-भर रह गया। गिरधारीराम में इस घटना के प्रति बहुत आक्रोश था। वह दो-चार दिनों तक अपने टोले के लोगों से मिलता-जुलता रहा था लेकिन बड़जीवों के खिलाफ़ टोले का एक आदमी भी तैयार नहीं हुआ। सभी कहने लगे कि मालिक लोग हलवाही छीन लेंगे और 'टराक्टर' चलाने लगेंगे, तो टोला भूखों मर जायेगा। गिरधारीराम ने हार-थककर मौन लगा लिया था। लेकिन उसका बेटा रामपरसाद अक्सर ऐसी घटनाओं पर बवाल मचाकर रख देता है। वह चुप

नहीं बैठता।

जैसे, प्राइमरी स्कूल से हलधर मास्टरजी के निकालने का सवाल आया। अब तक प्राइमरी स्कूल में बड़जीवों के लड़के ही पढ़ते रहे। यह स्कूल करीब, सत्तर-अस्सी साल पुराना है। पहले गुरुजी का पाठशाला कहलाता था, जबसे सरकार ने ले लिया तब से प्राइमरी स्कूल कहलाने लगा। अपने लाख प्रयास के बावजूद, रामपरसाद का बाप गिरधारीराम भी इस पाठशाला में दाखिल नहीं हो सका था। प्राइमरी स्कूल बन जाने के बाद रामपरसाद के दाखिले के लिए गिरधारीराम, परमानन मिसिर मास्टरजी के सामने गिड़गिड़ाता रहा था लेकिन वे कहने लगे कि 'रामपरसाद पढ़कर लाट बनेगा?' सरकारी नियम एक ओर रखा रह गया और गाँव का नियम जो बड़जीवों ने बनाया था, वही लागू हुआ, रामपरसाद के दाखिला के समय भी। इधर परमानन मिसिर मास्टरजी मर गये तो हलधर मास्टरजी आये। बेचारे गरीब थे और गरीबों से स्नेह रखते थे। सो, बड़जीवों से बिना कुछ कहे-पूछे, हरिजन टोली के लड़कों को स्कूल में बुलाने लगे, बड़जीवों के लड़कों ने स्कूल जाना बन्द कर दिया और वे स्कूल तभी गए, जब हलधर मास्टरजी चले गए। स्कूल की दीवारें और जमीन, लिपी गई, रजिस्टर बदले गए और नए मास्टरजी आए। हलधर मास्टरजी के जाने की बात सुनकर रामपरसाद कुछ समझ नहीं सका था। अभी आए हुए महीना भी नहीं बीता था। उसने मास्टरजी से पूछताछ की, तो पता चला कि लोगों ने उनको मारने-पीटने की धमकियाँ दीं और फिर भी वे नहीं माने, तो उनका तबादला करा दिए, लोग। रामप्रसाद, मास्टरजी को गाँव में ले गया। नीम के पेड़ के नीचे बच्चों की पढ़ाई चलने लगी। वह दौड़-धूप करने लगा, लेकिन, आफिसर ने उसकी बात नहीं मानी। अन्त में, हलधर मास्टरजी चले गए। भले ही वह हलधर मास्टरजी को नहीं रोक सका लेकिन चुप नहीं बैठा वह। गिरधारीराम की मिट्टी का ही बना है रामपरसाद, लेकिन पता नहीं क्यों, चुप नहीं बैठता वह। शायद, इसे ही पीढ़ियों का अन्तर कहते हैं···

बुढ़ापे की इस सत्तर साल की उम्र तक, यदि किसी ने सबसे अधिक

गिरधारीराम की सहायता की, तो वह थी उसकी डुग्गी, पहले वह डुग्गी नहीं बजाता था। पढ़-लिख तो सका नहीं, नहीं तो मिसिर मास्टरजी की किरपा से कहीं दफ्तर में चपरासी हुआ रहता। लेकिन, ऐसा नहीं हुआ। सबसे पहले उसने मरे हुए जानवरों के खाल निकालने का काम शुरू किया था। गाय-बैल के चमड़े को छील-सुखाकर शहर में बेचता था और उसी से पेट चलाता था। लेकिन यह धन्धा स्थायी तो था नहीं। इसलिए, रोपनी-कटनी में वह जाता था। कुछ दिनों तक हलवाही भी किया था, लेकिन, बाबू लोग से पटरी नहीं बैठी, तो घर आ बैठा। जब आजादी मिल गयी और 'सुराज' आ गया, तो गाँव के ग्राम पंचायत में उसने नौकरी कर ली। नौकरी थी डुग्गी बजाने की। तब, बीस आना मिलता था। किसी सरकारी आदेश को लोगों तक पहुँचाने के लिये डुग्गी बजानी होती थी। मसलन, माल गुजारी का भुगतान नहीं किये जाने पर किसी के कुर्की-जब्ती या निलामी की सूचना, फसल उग आने के बाद खूँटे से पालतू जानवरों को नहीं खोलने की सूचना आदि-आदि। इस डुग्गी ने गिरधारीराम की बहुत सहायता की। इसी डुग्गी के सहारे उसने प्रतिबन्धों के बहुत सारे किलों को तोड़ दिया। गाँव में उसने अपनी प्रतिष्ठा भी बनाई, वरना सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर उसे भी वही सब कुछ प्राप्त था, जो एक गँवई हरिजन को प्राप्त होता है।

अपने इस बुढ़ापे में जब गिरधारीराम डुग्गी पीटता, तो ऐसा लगता जैसे अपने जीवन के सत्तर वर्षों के कटु अनुभवों को एक साथ उड़ेल रहा हो। जब गाँव के किसी विपन्न आदमी पर कोई सम्पन्न पक्ष, कोर्ट से डिगरी करा लेता और कुर्की-जब्ती होने वाली होती, तो डुग्गी बजाते समय गिरधारीराम की भाषा से यह स्पष्ट हो जाता कि उसकी सहानुभूति उस आदमी के साथ होती, जो विपन्न होता और जिसके साथ अन्याय किया गया होता। वैसे जीता हुआ पक्ष उसे पैसे देता, जिससे, वह पराजित पक्ष के बारे में खूब ढिंढोरा पीटे और उसकी रही-सही प्रतिष्ठा पर भी पानी फेर दे। यही कारण था, कि बड़टोला के लोग भी गिरधारीराम को थोड़ा-बहुत महत्त्व देने लगे थे। कौन जाने, कब गिरधारीराम की डुग्गी किस पक्ष में बोलना शुरू कर दे?

जब गाँव में दंगे-फसाद होते, नालिश-फौजदारी होती या कोई आपसी झगड़ा होता तो गिरधारीराम का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता। गाँव की दिन-ब-दिन जहरीली होती राजनीति के कारण गिरधारीराम की स्थिति अत्यधिक सुरक्षित होती। बड़जीवों के टोले में ग्रुपों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती चली जाती। सभी ग्रुपों में पारस्परिक प्रतिद्वन्द्वता होती। ये सारे ग्रुप केवल जातीय आधार पर नहीं बने होते। आजादी के बाद कई ग्रुप गाँव के राजनीतिक नेताओं के भिन्न विचारों के कारण बने। खेत-बघार के झगड़े, भाई-गोत्र और खान-पान के नाम पर भी कई ग्रुप थे। सभी ग्रुप के लोग चाहते कि, गिरधारीराम उनसे मिला रहे। बड़जीवों में जितना अधिक कलह होते, गिरधारीराम की स्थिति उतनी ही अधिक सुरक्षित होती। लेकिन आश्चर्य की बात यह, कि हरिजन टोली के सवाल पर सभी ग्रुप एक हो जाते। वे अपनी प्रतिद्वन्द्वता को एकदम भूल जाते। जैसे, गैर-मजरूआ जमीन को लेकर फगुना की पिटाई की गई। महेशा बाबा की अकेले हिम्मत नहीं थी जो फगुना पर हाथ उठा देते। और फगुना नाजायज था भी नहीं। वह जमीन सरकारी सड़क के किनारे थी और उस पर किसी का दखल नहीं था। लेकिन फगुना की मेहनत के कारण उसमें अच्छी फसल होने लगी थी। बस जमीन महेशा बाबा की नजर पर चढ़ गई। महेशा बाबा ने नकली कागज़ात बनवाए और खेत पर दखल के लिए बढ़ आए। पहले दिन फगुना अड़ा तो वे चुपचाप लौट गए। लेकिन दूसरे दिन पूरा बड़टोल लाठी-भाला लिए, खेत दखल करने आया। फगुना बिना डरे खेत पर गया। और हल के जुए को उसने पकड़ लिया। फिर, उसकी खूब पिटाई हुई। अन्त में, वह अचेत हो गया। और रामपरसाद के अलावे, कोई उसे देखने भी नहीं गया। हलवाही छूट जाने का भय अब भी हरिजन टोली के लोगों को लाठी के खिलाफ हाथ उठाने के लिए रोक रहा था···।

गिरधारीराम की औरत का हाथ बहुत साफ था। कैसी भी प्रसव पीड़ा हो, वह आराम पहुँचाने में माहिर थी। गाँव-जवार, सभी जगह उसके हाथ की सफाई का हल्ला था। बच्चा कराने की कला में वह इतनी निपुण थी कि लोग शहर के अस्पताल की अपेक्षा गिरधारी की चमाईन को ही ज्यादा महत्त्व देते थे। यही कारण था कि गिरधारीराम की थोड़ी इज्जत-

प्रतिष्ठा थी। कौन जाने कब गिरधारी व चमाईन की आँख न खुले और बच्चे तथा गर्भवती का जीवन खतरे में पड़ जाय।

लेकिन गिरधारीराम एवं उसकी औरत की 'बड़टोल के लिए उपयोगिता' के कारण लोग रामपरसादवा को क्षमा करने वाले थे, ऐसी बात नहीं थी। पूरा गाँव चिढ़ा हुआ था उससे। और किसी की तो हिम्मत होती नहीं थी। लेकिन एक वह था जो हर विवाद में टाँग अड़ा देता था।

इस बार गिरधारीराम की डुग्गी गाँव के हर टोले में बजी थी। हफ्तों बजती रही थी। इस बुढ़ापे में गिरधारीराम में आई स्फूर्ति देखकर लोगों को आश्चर्य होता था। वह हर दो घण्टे बाद किसी के दालान पर रुककर आग सुलगाता और अपनी डुग्गी सेंकता। जब डुग्गी टनकने लगती, तो फिर ढिंढोरा पीटना शुरू करता। डुग्गी टनकने लगती···डुग···डुगऽऽ··· डुग···डुगऽऽऽ···डुग। वह खाँसता खंखारता। फिर बोलने लगता—'सरकारी ऐलान किया जाता है, सुनो भाइयो, डुग···डुग···कि पनरह तारीख की, साँझ बेरा चार बजे, सरैया बाजार पर 'मनतरी जी' खैरात बाँटने को आ रहे हैं···डुग···डुग···जिसे अनाज-कपड़ा चाहीं, उ बाजार पर जुट जाय···डुग···डुगऽऽ···डुग।'

जिस दिन से गाँव में डुग्गी बज रही थी, मनतरी जी का आगमन चौपालों में चर्चा का मुख्य विषय बन गया था। वे लोग, जिनके मकान भस गए थे, गाय-गेरू पानी के साथ बह गए थे, घर में खाने के लिए अन्न का एक दाना भी नहीं बच गया था, वे अब पनरह तारीख की उम्मीद पर जीना शुरू कर दिए थे···कि मनतरी जी आयेंगे, कपड़े और अन्नदाना बाँटेंगे, मकान उठाने के लिए पैसे का प्रबन्ध कराएँगे और गाँव के आम लोग, फिर जीने लगेंगे···। गाँव के अधिकांश लोगों के पास इस उम्मीद के अलावे जीते रहने का कोई दूसरा सहारा नहीं था।

इस साल की बाढ़ अभूतपूर्व थी। गाँव के पुरखा—पुरनिया लोगों को भी बाढ़ की इस भयावहता का अनुभव नहीं था। आपने, पटना की बाढ़ के बारे में सुना ही होगा। यदि पानी पटना की ओर पसर नहीं गया होता तो आज हमारे गाँव का कहीं नामो-निशान नहीं बचा होता। हमारा

गाँव सोन नदी के बिलकुल तट पर है। बाढ़ का हर साल आना नियम-सा बन गया है। लेकिन हर साल की बाढ़ एक ही तरह भयावह नहीं होती। इस साल की बाढ़ ने तो पिछले सारे रिकार्ड तोड़ दिए। गाँव में कमर से ऊपर पानी भर गया था। सोन नदी की धारा गाँव से होकर सीधी गुजरती थी। माटी से बने सारे-के-सारे मकान हरिया के पेट में समा गए। लोग तीन दिनों तक पेड़ों पर टँगे रहे। शिवाला की छत पर सैंकड़ों लोग शरण पाए। छोटे-छोटे कई बच्चे पानी के साथ बह गए। कई महिलाएँ डूब गईं। पालतू सूअरों और गाय-बैलों का कुछ पता नहीं लगा। कई तो खूँटे में बंधे-बंधे मर गए। कई लोग साँपों के दंस से मरे।

हरिजन टोली की जमीन गाँव के स्तर से काफी नीची पड़ती थी। इसलिए, सबसे पहले पानी का आक्रमण हरिजन टोली पर ही हुआ था। पानी इतना अचानक आया कि लोग सम्भल भी नहीं सके। जब पानी हरिजन टोली में प्रवेश किया तब, सारे लोग गाढ़ी नींद में सो रहे थे। सूअरों के हकड़ने और मुर्गों के फड़फड़ाने की आवाज सुनकर लोगों की नींद खुली, तो वे पूरे टोले को पानी से घिरा पाए। झोपड़ियाँ अरराकर भंसना शुरू हो गईं थीं। पानी की धारा में बहते सर्प किसी तिनके के सहारे की खोज में लोगों की धोती पकड़ लेते थे। पानी की सतह पर विषैले साँप-ही-साँप रेंग रहे थे। पूरे टोले की जान खतरे में थी। हरिजन टोली के लोगों के लिए निकलने का रास्ता नहीं बच गया था। जलधारा इतनी तेज थी, कि कोई पानी पार कर, बड़टोला की ऊँची जमीन पर जा सकने की हिम्मत नहीं करता था। जलस्तर बढ़ता जा रहा था। बच्चे और महिलाएँ चीख रहे थे, कोलाहल मचा हुआ था। एक आदमी की भी बचने की सम्भावना धूमिल पड़ती जा रही थी। जलस्तर जितनी तेजी से बढ़ता जा रहा था, मनोबल उतनी ही तेजी से गिरता जा रहा था। तभी रामप्रसाद चीखने लगा था। वह चिल्ला-चिल्लाकर लोगों को एक ही जगह इकट्ठा होने के लिए कह रहा था। चारों ओर खौफनाक अन्धेरे का साम्राज्य था। हाथ को हाथ नहीं सूझते थे। किसी को पहचान पाना कठिन हो गया था। पानी छाती से ऊपर जा रहा था। गिरधारीराम ने भी अपनी डुग्गी सम्भाल ली थी। वह डुग्गी पीटता था और चिल्लाता था—'डरिह मत

भईया···निकल चले के काम बा···।' लोगों में धीरे-धीरे साहस बँध रहा था। सारे लोगों को एक जगह जुटाया, रामपरसाद। बजरंगवली के नारे गूँजने लगे। अपने बच्चों को कंधों पर लेकर औरत-मर्द, कतार बनाए। एक-दूसरे का हाथ जोरों से पकड़कर पानी पार कर, बड़टोला की ओर बढ़ने लगे। कतार में सबसे आगे रामपरसाद था। टोले में गिरधारीराम जोरों से हाथों को पकड़ने की हिदायत देने और लोगों को एक जगह इकट्ठा करने में व्यस्त था। जलस्तर तेजी से बढ़ता जा रहा था। लोगों ने उससे कहा भी—'गिरधारी काका, आगे निकल जाओ, वरना बुढ़ापे का समय है, पानी पार करना मुश्किल हो जाएगा।' लेकिन वह लोगों को बाहर निकल जाने के पहले, जाने के लिए तैयार नहीं था। वह कहता—'अरे अब गिरधारी काका मर भी जाय तो क्या अन्तर पड़ता है···तुम लोग जवान हो, बच्चे हैं, अपनी जान बचाओ।' और कतार की अन्त में हाथ पकड़े वह था और थी रामपरसादवा की माई। रामपरसादवा और गिरधारीराम के इतना करने के बावजूद, चार बच्चे डूब गए, एक औरत पानी के साथ बह गई। यदि रामपरसादवा नहीं होता, तो एक आदमी भी नहीं निकल पाता।

हरिजन टोली की नीची जमीन पानी से भर गई थी और पानी बड़-टोल की ऊँची जमीन पर भी पसरने लगी थी। रामपरसाद सभी लोगों को लिए, तुलसी चबूतरे के टीले की ओर बढ़ गया, जो बड़टोला के बीचों-बीच में था। गिरधारीराम अपनी डुग्गी बजा-बजाकर लोगों को जगा रहा था और पानी से खबरदार कर रहा था। अन्धेरी गलियों में चलते-चलते कहीं उसे ठोकर लग जाती और वह फिर उठता था और फिर डुग्गी बजाने लगता था। पानी बड़टोल की गलियों में प्रवेश कर रहा था। लोग अपनी कीमती सामानों को बाँधकर घर छोड़ने के लिए तैयार हो रहे थे, गाय, बैल और भैंस जैसे पालतू जानवर खूँटों से खोले जा रहे थे। उनके घर से निकलते-निकलते, गाँव के सभी टोलों में पानी ने छाप लिया। लेकिन अब भी गिरधारीराम डुग्गी पीटता जा रहा था। सभी अपनी जान बचाने में मशगूल थे। लेकिन जैसे, गिरधारीराम को अपनी जान की चिन्ता नहीं थी।

बड़टोला के वे लोग, जिनके माटी के मकान थे, जगता बाबा की छत

की ओर ध्यान लगाए हुए थे। जगता बाबा का कोठा बहुत लम्बा-चौड़ा था। उस पर एक साथ सैकड़ों लोग खड़े होकर अपनी जान बचा सकते थे। कुछ लोग तो छप्परों पर चढ़ जाना ही बेहतर समझे। कुछ लोग जगता बाबा की हवेली की ओर बढ़े। लेकिन, किवाड़ नहीं खुला। अन्धेरी रात में यह भी डर लगता था, कि सुरक्षित स्थान की खोज में दौड़ते गाय-बैल कहीं सींगों से ही काम तमाम न कर दें। लोग बारी-बारी से जगता बाबा की हवेली जा रहे थे और चीख-चिल्लाकर, निराश होकर लौट आते थे। लोग गाँव के किनारे के पेड़ों पर टँगे रहे थे।

कुछ लोग शिवाला की छत पर चढ़ने की बात सोच रहे थे। लेकिन, वे संकोच कर रहे थे। महादेव जी के सिर पर पैर रखकर खड़े होने पर पाप लगने से, वे डर रहे थे। तुलसी चौतरा की जमीन भी अब सुरक्षित नहीं लगती थी। पानी इधर भी बढ़ रहा था। रामपरसाद ने हरिजन टोली के लोगों को शिवाला की छत पर चलने का निर्देश दिया। लोग शिवाला की ओर बढ़ने लगे। लेकिन, शिवाला के निकट पहुँचकर, वे फेरे में फँस गए। शिवाला के चबूतरे पर खड़े बड़टोला के लोग उन्हें मन्दिर से सटने के लिए भी मना कर रहे थे। एक बूढ़े ने कहा—'चमरटोली के अनेत के कारण ही यह प्रलय हो रहा है···।' लेकिन रामपरसाद अड़ गया : उसके निर्देश पर चमर टोली के लोग शिवाला की छत पर चढ़ने लगे। उनके देखा-देखी बड़टोला के कुछ लोग भी चढ़े। लेकिन, कुछ लोग महादेवजी के श्राप के डर से चबूतरे पर खड़े रहे। और उन लोगों ने कीर्तन गाना शुरू कर दिया था···जय सियाराम···जय-जय···सियाराम···।

बिजली जोरों से कड़कने लगी थी। आकाश में काले बादल उमड़-घुमड़ रहे थे। भारी बारिश की बात सोचकर ही लोग काँप जाते थे। राम-परसाद उन्हें अब भी साहस दिला रहा था···'घबराने से कुछ नहीं होगा··· सब ठीक हो जाएगा···।'

तभी, जगता बाबा की हवेली की छत से टार्च की रोशनी चमकी थी। शिवाला से जगता बाबा की हवेली का कुछ ही बाँस का फासला था, इस-लिए रोशनी छत पर खड़े लोगा के चेहरों पर पड़ रही थी। सारे के सारे लोग खड़े थे। छत पर इतने लोग भर गए थे कि बैठने की जगह नहीं बच

गई थी। शिवाला के आसपास की माटी की मकानें अरराकर धँस रही थीं और पानी में विलीन हो रही थीं। रामपरसाद शिवाला के गुम्बज पर तिरछे खड़ा था। टार्च की रोशनी जिधर से आ रही थी, वह उधर ही देख रहा था। तभी उधर से आवाज़ आई थी—···'कौन साला मन्दिर की छत पर चढ़कर पाप बटोर रहा है, रेऽऽ' आवाज़ सभी पहचान रहे थे। जगता बाबा के पुत्र बोल रहे थे। लोग यह भी जानते थे कि शिवाला का आधा से अधिक खर्च जगता बाबा दिए थे। इसलिए, उन्हें लोगों को छत पर चढ़ने से मना करने का अधिकार भी था। जगता बाबा के बेटे की बात सुनकर लोग सन्न थे। पता नहीं, अब क्या होगा? तभी रामपरसाद की नज़र जगता बाबा की राईफल पर पड़ी। टार्च की रोशनी में वे गोली लोड कर रहे थे। वह क्षण-भर के लिए विचलित हो रहा था। वह गुम्बज से उतरकर लोगों के बीच आ गया। जगता बाबा की आवाज़ तेज़ होती जा रही थी। और अचानक, लोग डर के मारे एक-दूसरे से सटकर रह गए। सबके होश उड़ने लगे। कारतूस छूटने की गगन-भेदी आवाज़ सुनकर सभी सिहर गए। और इसके बाद जगता बाबा ने अन्तिम चेतावनी दी। लेकिन रामपरसाद डटा रहा। कुछ लोग डर के मारे शिवाला की छत से नीचे उतरने लगे थे। लेकिन जब उन्होंने देखा कि पानी बढ़कर छाती से ऊपर आ गया है और महादेव जी पानी में समाधि लेते जा रहे हैं, तो वे लटके रह गए। तभी गिरधारीराम दोनों हाथ से पानी काटता शिवाला पर आ पहुँचा था। और छत पर ठड़े होकर वह भोथरी आवाज़ की डुग्गी पीटता रहा था। गिरधारीराम, रात-भर डुग्गी बजा-बजाकर 'बिरहा' गाता रहा था। और पानी के भय से डरे लोग बिरहे की राग में खोकर, भय भूलने की कोशिश करते रहे थे।

सोन नदी का पानी जिस वेग से आता है, अक्सर उसी वेग से लौटता भी है। ऐसा देखा गया है, कि दो-चार घण्टों में ही पानी पूरे इलाके को छाप लिया, और धन-जन को अपने पेट में समेटते, कुछ ही घण्टों में लौट भी गया। लोगों को बस यही उम्मीद बंधी थी कि जल्दी ही, पानी लौट भी जाएगा। लेकिन, दूसरे दिन दोपहर तक पानी बढ़ता ही गया। खैरियत तो यह थी कि बाँध तोड़कर पानी 'पटने' की ओर पसरने लगा। वरना, पानी

अभी और बढ़ता। उस दिन भी पानी जमा रहा। लेकिन रात-भर में काफी पानी निकल गया, तो लोगों की जान में जान आई। भूख से बिलबिलाते गाँव वालों को थोड़ी राहत तब मिली, जब गाँव से पानी निकलकर, चमरटोली के गढ़हे में जमा होने लगा। और तब लोगों को भूख लगने लगी। पानी का भय जब तक था, तब तक किसी को भूख-प्यास नहीं लग रही थी। बस, केवल जान की भूख थी उन्हें···। लोग सात-आठ दिनों तक प्रतीक्षा में रहे कि शहर की ओर से अन्नदाना से लदी-सरकारी नावें आएँगी। लेकिन कोई नहीं आया। सभी लोग पटना बचा रहे थे···जैसे, पटना ही भारत हो···। पटना चूंकि राजधानी थी, पटने में मन्त्री थे, पटने में विधान सभा थी, पटने में आफिसर और मन्त्री लोग थे, पटना में कारें थीं, जिन्हें जंग लगने से बचाना था, पटने में हवाई अड्डा था, जिस पर उतरकर बड़े मन्त्री लोग, स्थिति की गम्भीरता की जाँच करते थे, इसलिए, पटना को बचाना ज्यादा जरूरी था। यहाँ गाँव में कौन-सी महत्त्वपूर्ण जान थी, जगता बाबा को छोड़कर या कौन से मन्त्री रहते थे यहाँ, जो गाँव को बचाना ज़रूरी होता? और गाँव के लोगों को तो हर साल बाढ़ से लड़ना है, इसलिए ये भी लोग अभ्यस्त हो गए थे। पटने में तो रईस बाबू लोग थे, फाइलें उलटने वाले, प्रजातन्त्र की चर्चा करने वाले, हल चलाने वालों की जान का क्या महत्त्व था भला?

पहाड़-जैसे बारह दिन काटने के बाद, पनरह तारीख आया। आज 'मनतरी जी' भगवान बनकर खैरात बाँटने आने वाले थे। दोपहर होते-होते लोगों के झुण्ड, सरैयाँ बाजार की ओर दौड़ने लगे थे। आषाढ़ की चमड़ी पका देने वाली धूप की परवा किए बिना, नंग-धड़ंग बच्चे, एक-दूसरे से पहले खैरात लेने पहुँचने के लिए, दौड़ रहे थे। औरतों के कई समूह तेज़ी से बाज़ार की ओर बढ़ रहे थे। दोपहर में ही बाज़ार, लोगों की भीड़ से खचाखच भर गया।

गिरधारीराम अपनी गर्दन में डुग्गी लटकाए, सरैयाँ बाज़ार पहुँचने की तैयारी में था। लेकिन तभी, रामपरसाद बीच में आ गया। कहने लगा—'तू न जा बाबू! जब बाढ़ आकर प्रलय मचा जाता है तो ये घी की

बनी पूरियाँ बँटती हैं, और साल-भर कोई पूछने नहीं आता, कि किसकी क्या हालत है ··' लेकिन, गिरधारीराम मानने वाला नहीं था। उसने कहा—'मैं डुग्गी बजाता हूँ रे, जान-जी देकर लोगों को सावधान करता रहा, खैरात मिलने के बारे में बताता रहा। लोगों की तरह मैं भी तो भूखों मर रहा हूँ···यदि दो-चार गज कपड़े और दो-चार शाम का आटा मिल जाय, तो, क्या हरज? मन्तरीजी से मैं कहूँगा कि कैसे जान परखेलकर मैं गाँव वालों को बचाता रहा, और वे बहुत खुश होंगे और मुझे ज़रूर कुछ ज्यादा ही देंगे···।' रामपरसाद मना करता रह गया लेकिन, गिरधारीराम कब मानने वाले थे?

सरैयाँ बाजार पर बरसात के मेंढ़कों की तरह 'सामाजिक कार्यकर्त्ता' टर्र-टर्र लगा रखे थे। सभी मन्तरी जी के स्वागत की तैयारी में स्वयं को व्यस्त दिखाने में व्यस्त दिख रहे थे। स्वागत की तैयारियाँ करीब-करीब पूरी कर ली गई थीं—प्रवेश द्वार बन चुके थे, रंग-बिरंगी झंडियाँ टंग गई थीं, शामियाना खड़ा हो गया था और मंच पर माइक बंध गया था। बस, मन्तरी महोदय के आने-भर की देर थी···।

स्वयं-सेवक, इकठ्ठी हुई भीड़ को पंक्तिबद्ध करने में परेशान थे। जगता बाबा अपने सिल्कनी ठाट में, तैयारी का निरक्षण कर रहे थे। जब कभी कच्ची सड़क से किसी गाड़ी के आने की भर्राहट भीड़ के कानों में पड़ती, भीड़ में खलबली मच जाती। कतारें भंग हो जातीं। स्वयं-सेवक धर-पकड़ कर लोगों को फिर से पंक्तिबद्ध करने में लग जाते। प्रतीक्षा की भी एक सीमा होती है···भीड़ की आँखें शहर से आती कच्ची सड़क को देखते-देखते थक गई थीं। पैर घण्टों से एक ही टाँग पर खड़ा होने के कारण दुख गए थे। गोधूलि का समय हो रहा था। शाम का धुँधलका गहराता जा रहा था। भीड़ निराश होती जा रही थी। वातावरण में अब कोई कोलाहल नहीं था। खामोशी, भीड़ को अपने आगोश में जकड़ती जा रही थी। मन्तरी जी के आने की उम्मीद समाप्त होती जा रही थी। लेकिन, लोग ज्यों-की-त्यों प्रतीक्षारत खड़े थे। वे लौट नहीं रहे थे··· प्रभु के दर्शनार्थ···।

गिरधारीराम भीड़ से अलग डुग्गी लटकाये टहल रहा था। राम,

परसादवा की बातें उसे ठहर-ठहर कर खरोंच रही थीं। जगता तिवारी और दूसरे खद्दरधारी स्वयं-सेवकों के प्रति उसके मन में नफ़रत बढ़ती जा रही थी···साले सभी झूठे हैं। हफ्तों मुझसे डुग्गी पिटवाते रहे और मन्तरी जी के आने का अब तक कोई ठिकाना ही नहीं है···।

तभी उसका ध्यान टूटा। भीड़ में खलबली मची हुई थी। मन्तरी जी मंच पर विराजमान हो गए थे। कार्यकर्ता मन्तरी जी को घेरे खड़े थे। मन्तरीजी अपने साथ लाठीधारी और राइफलधारी सिपाही भी लाए थे। वे मच पर खड़े हुए और बोलने लगे—'प्यारी जनता ! मैं आपसे मिले बिना कैसे लौट सकता था। इतनी बड़ी भीड़ को देखकर लगता है कि आप मुझसे बहुत स्नेह रखते हैं···यदि मैं आगे भी आपका प्रतिनिधि बना रहा तो आपके लिए बहुत कुछ करना है मुझे···मसलन, नदी पर बाँध तैयार करवाना, सड़क को पक्की बनवाना···' स्वंय-सेवक तालियाँ पीटते हैं। जनता भी तालियाँ पीटती है···मन्त्री जी लोगों को शान्त कराते हैं—'आप लोगों की संख्या बहुत अधिक है, लेकिन मेरे पास इतने कपड़े नहीं हैं···बीस धोतियाँ और दस साड़ियाँ ही मैं आपको दे सकता हूँ···जगता जी कुछ गरीब लोगों को जानते हैं, जिन्हें कपड़े की ज़रूरत है। वे नाम बोलें, मैं कपड़े बाँटता हूँ···भीड़ में फिर खलबली मची। गिरधारीराम भीड़ के एक कोने से चिल्लाया···'मुझे भी ज़रूरत है धोती की···मेरे पास पहनने के लिए कुछ नहीं है···' लेकिन, उसकी आवाज़ भीड़ की खलबली में खो गयी। वह कई बार चिल्लाता, चिल्लाता रहा। लेकिन आवाज़ मंच तक पहुँचते-पहुँचते भीड़ की आवाज़ में खो जाती थी···एक नम्बर···दो नम्बर···तीन नम्बर ···चार नम्बर···अरे यह क्या ? जगता तिवारी तो चमर-टोली के किसी आदमी का नाम ही नही ले रहे थे। भीड़ चिल्लायी···मुझे चाहिए··· मैं नंगा हूँ। मुझे चाहिए···लेकिन, सभी आवाजें एक-दूसरे को काटती हुई शोर बनकर रह गईं। लोग मंच की ओर बढ़ने लगे। रेला पर रेला आने लगा। मंच के कोने पर रखे कपड़े की गाँठ को किसी ने मंच के नीचे खींच दिया। भीड़ कपड़े की गाँठ पर टूट गयी। कपड़े चिथड़े होकर हाथों में बटने लगे। जिस हाथ में एक कपड़ा आता, सैकड़ों हाथ उस हाथ की ओर झपट पड़ते। भीड़ के सारे लोग मंच तक पहुँचकर गाँठ से कपड़े

निकाल लेने के लिए जान लड़ा रहे थे, कपड़े टुकड़े-टुकड़े में बँटकर फटते जा रहे थे और हाथें टुकड़ों की ओर लपकती थीं। चीखो-पुकार शुरू हो गया। लोग एक-दूसरे पर गिरने लगे। चेहरे, कपड़ा नोचने के प्रयास में, लहूलुहान हुए जा रहे थे। स्वयं-सेवक मन्त्री जी को सुरक्षा देने में व्यस्त थे।

मन्त्री जी चले गए। स्वयं-सेवक भी चले गए। लेकिन भीड़ ज्यों की त्यों गाँठ पर जूझ रही थी। कई बच्चे और औरतें, भीड़ में समा गयी थीं और चीख रही थीं। लेकिन भीड़ अपने काम में लगी थी। किसी ने पेट्रो-मेक्स की रोशनी में मंच से सटे हुए एक आदमी को औंधे हुए देखा। उस आदमी का चेहरा लहूलुहान हो गया था। उसके गर्दन में रस्सी लटक रही थी और बगल में डुग्गी फूटकर, चूर-चूर हो गयी थी। वह भीड़ से कहना चाहता था कि डुग्गी वाला बूढ़ा आदमी कुचलकर अन्तिम साँसें ले रहा है, लेकिन उसकी आवाज़ भीड़ के कोलाहल में गुम हो जाती थी। रामपरसाद भीड़-बगल में खड़ा, उन्हें जूझता देखता रहा था...।

वह उन्हें रोकना चाहता है कि वे अपने ही चेहरे को लहूलुहान न करें।

वह उन्हें रोकना चाहता है कि वे अपने पैरों के तले स्वयं को न कुचलें।

वह उन्हें कहना चाहता है कि वे गिरधारीराम की तरह, एक पराजित विजेता न बनें।

लेकिन, उसकी बात सभी के कानों तक पहुँच नहीं पाती। अलबत्ता, कुछ छोकरे भीड़ से बाहर निकल आते हैं, जो उसकी बात को सुन रहे होते हैं। लेकिन, बाकी लोग अभी भी जूझते होते हैं।

भीड़ आज भी जूझ रही है...लेकिन, रामपरसादवा की बात सुनकर एक-एक लड़के निकलते आ रहे हैं, भीड़ से बाहर, बारी-बारी से।

० ०

एक ही रास्ता

सुधन घर लौटकर सारा गुस्सा बुधुआ पर उतारने लगा। बुधुआ क्या जानता बेचारा कि मालिक किस कसूर के लिए उसे लताड़ने लगा। मालिक के लौटने की प्रतीक्षा में वह गली के बीचों-बीच पसरा घण्टे-भर से इन्तज़ार करता रहा था। और मालिक को आते देखकर ही उछल-कूद मचाने लगा था। रोज मालिक उसे पुचकारता था और बुधुआ उसके शरीर पर अपने पंजे फेंककर मालिक के साथ खेलने लगता था। लेकिन, आज तो मालिक ने बुधुआ को चूमने-चाटने का अवसर ही नहीं दिया। वह आते ही लगा बुधुआ को मारने।

बुधुआ काँय-काँय करता रहा और पिटता रहा। फिर भी भागा नहीं। मालिक में उसकी आस्था ज्यों-की-त्यों बनी रही और उसने अपने मालिक के समक्ष आत्मसमर्पण-सा कर दिया। बुधुआ चारों पल्ले चित होकर काँय-काँय करते हुए तब तक पिटता रहा जब तक मालिक मारते-मारते थक नहीं गया।

सारा गुस्सा ठण्डा करने के बाद सुधन अपने डेरे की ओर बढ़ गया। बुधुआ भी उठा और मालिक के पीछे-पीछे डेरे तक गया। मालिक डेरे के अन्दर घुस गया और बुधुआ डेरे के सामने यूँ ही बैठकर कुड़कुड़ाता रहा। थोड़ी ही देर में सुधन का लड़का मंगला हाथ में रोटी का टुकड़ा लिए बुधुआ के पास चला आया और लगा बुधुआ को पुचकारने। लेकिन बुधुआ सुगबुगाया तक नहीं। वह बुझी-बुझी आँखों से मंगला को देखता रहा।

मंगला बुधुआ के सामने रोटी का टुकड़ा फेंककर खड़ा हो गया लेकिन बुधुआ ने उसे सूँघा तक नहीं। मंगला को बुधुआ की यह हरकत देखकर आश्चर्य हो रहा था। रोज तो बुधुआ रोटी का टुकड़ा हाथ में देखते ही

कूदने-फाँदने लगता था। यह आज उसे क्या हो गया है? मंगला लगा उसे उलटने-पुलटने और कनैठी देने। फिर भी बुधुआ टस-से-मस नहीं हुआ। अपने जबड़े को जमीन पर टेककर अपनी नाराजगी प्रकट करता रहा।

सुधन एक मेडिकल कम्पनी के दफ्तर में चपरासी था। छोटा-सा परिवार। एक घरवाली और एक सात साल का लड़का मंगला। बुधुआ था तो कुत्ता, लेकिन कई वर्षों से सुधन के परिवार के एक सदस्य की तरह था। सुधन के मन में बुधुआ के लिए उतना ही स्नेह और प्यार होता था, जितना मंगला के लिए। मंगला, मंगल के दिन जन्मा था, इसलिए सुधन ने उसका नाम मंगला रखा था। उसी तरह बुधुआ बुधवार को जन्मा था, अस्तु उसने उसका नाम बुधुआ रख दिया था। बुधुआ, सुधन का दिन-रात का साथी था। वह रोज सुधन के साथ-साथ उसके दफ्तर जाता। दिन-भर दफ्तर में बैठा रहता और शाम को सुधन के साथ ही घर लौटता। सुधन अपने टिफिन बॉक्स में बुधुआ के लिए भी दो रोटियाँ रख ले जाता था। खाने की छुट्टी होने पर दफ्तर के बरामदे में वे दोनों बैठ जाते और रोटी खा लेते!

इधर कुछ दिनों से एक नई समस्या उठ खड़ी हुई थी। सुधन के दफ्तर जाने का एक ही रास्ता था। पाटलीपुत्र कालोनी होकर। इसी कालोनी में सुधन के बड़े साहब भी रहते थे। सड़क के दोनों ओर बड़े-बड़े साहबों के मकान थे। इन साफ-सुथरे मकानों में से अधिकांश में विलायती कुत्ते पले हुए थे। सुधन जब इस रास्ते से बुधुआ के साथ गुजरता तो कालोनी के सारे विलायती कुत्ते एक साथ भौंकना शुरू कर देते। खैरियत यही होती कि उनमें से अधिकांश कुत्ते सिक्कड़ों से बन्धे होते। जो कुत्ते बिना सिक्कड़ के होते, वे सुधन के पीछे-पीछे बुधुआ को देखकर खूब भौंकते और उछल-कूद मचाते।

कुछ दिनों बाद तो ऐसा हो गया कि कुत्तों का भौंकना सुनकर पूरी कालोनी के किशोर और फैशनेबल लड़के-लड़कियाँ अपनी छतों पर चढ़ आते और अपने-अपने विलायती कुत्तों को ललकारने लगते। सुधन घबरा जाता और जल्दी-जल्दी भागता हुआ सड़क तय करता। कुत्तों का जोर-जोर से भौंकना सुनकर बुधुआ को लगता कि वे उसके मालिक पर आक्रमण

करना चाहते हैं और सुरक्षा भाव से वह भी भौंकता। कुछ ही दिनों में स्थिति यह हो गई कि सुधन का रास्ता चलना मुश्किल होने लगा। ज्यों ही सुधन कालोनी में घुसता, कुत्ते भौंकने लगते और कालोनी-भर के लोग समझ जाते कि जिजल साहब का चपरासी जा रहा है। कुछ शरारती लड़कों ने तो अपने कुत्तों के सिक्कड़ खोलने शुरू कर दिए और उनके कुत्ते अपना-अपना अहाता फाँदकर सड़क पर बुधुआ के पीछे आकर भौंकने लगते। लेकिन बुधुआ भागता नहीं था और न उन कुत्तों के साथ कोई छेड़-छाड़ ही करता। बस, मालिक के पीछे दुलकी चाल में वह सीधा चलता जाता।

सुधन को अक्सर साहब की कोठी पर जाना पड़ता था। कभी साहब का खाना ले आने, तो कभी कोई सौगात पहुँचाने। कभी उनके बच्चों को स्कूल से लाकर घर छोड़ जाने, तो कभी सिनेमा का टिकट मेमसाहब तक पहुंचा आने। सुधन जहाँ-कहीं भी जाता बुधुआ उसके पीछे लग जाता। साहब की कोठी पर जाना-आना और कालोनी की सड़क से गुजरना बुधुआ के कारण सुधन को दूभर होने लगा था। अब एक ही विकल्प बचा था : या तो बुधुआ को दफ्तर न ले जाया करे, या फिर दफ्तर जाने का रास्ता बदल दे। अच्छा तो यही था कि वह बुधुआ को दफ्तर ही न ले जाए। आखिर वह दफ्तर में काम करने जाता है, कुत्ते को टहलाने नहीं। लेकिन, बुधुआ को साथ जाने से रोकना इतना आसान काम नहीं था। दफ्तर जाने के पहले वह बुधुआ को रस्सी से बाँध देता, लेकिन घण्टे-दो घण्टे बाद बुधुआ किसी तरह दफ्तर पहुँच ही जाता। बुधुआ के कारण सुधन काफी परेशानी में पड़ गया था।

उस दिन साहब के दफ्तर पहुँचते ही सुधन को उनकी कोठी दौड़ना पड़ा। साहब पान का डिब्बा घर ही छोड़ आए थे। सुधन को जब कोठी जाने का आदेश हुआ तो वह मन ही मन झुंझलाया : ऐसा साहब तो देखा ही नहीं कभी। चौबीस घण्टे पीछे पड़े रहते हैं। एक मिनट भी बैठा नहीं देख सकते। कोई-न-कोई काम लगा ही रहता है। सुधन की इच्छा हुई कि साहब से कहे : सरकार, अभी तो चला आ रहा हूँ, दौड़ा-दौड़ा। शरीर पसीने से लथपथ है। थोड़ा आराम कर लूं तो ला दूंगा। लेकिन हिम्मत

नहीं हुई कि बड़े साहब की बात को टाल सके।

जेठ की चिलचिलाती दोपहरी में वह सड़क पर चल पड़ा। कुछ आगे बढ़ा तो देखा, पीछे-पीछे बुधुआ भी दुम हिलाता चला आ रहा है। उसे चिन्ता हुई, सालाऽऽ ! फिर भौं-भौं करायेगा। बुधुआ पर ईंट के दो-तीन टुकड़े फेंककर सुधन ने उसे भगाना चाहा। लेकिन बुधुआ भागने वाला कब था ! वह सुधन के पीछे-पीछे साहब की कोठी पर पहुँच ही गया। सुधन कोठी के अहाते में घुसा तो बुधुआ भी घुस गया।

अभी सुधन कॉलबेल दबाने के लिए बढ़ा ही था कि साहब की कुतिया टोनी अहाते में घुसे आवारा कुत्ते को देखकर उस पर टूट पड़ी। वह लॉन के किसी पौधे के नीचे छुपकर आराम कर रही थी, जिससे इस पर सुधन की नज़र नहीं पड़ी थी। लेकिन बुधुआ भागा नहीं। अपने मालिक की उपस्थिति देखकर वह टोनी से जूझ गया।

जब तक कि मेमसाहब और उनके लड़के बाहर आएँ, टोनी और बुधुआ आपस में भिड़ चुके थे। पहले आक्रमण में टोनी का पलड़ा भारी पड़ रहा था, लेकिन जब बुधुआ ने पैंतरे बदल-बदलकर आक्रमण शुरू कर दिए तो टोनी की हालत पस्त होने लगी। पहले तो टोनी को मज़बूत पड़ते देख मेमसाहब और उनके लड़के खुश हो रहे थे और उनका बड़ा लड़का तालियाँ बजाने लगा था; लेकिन जब बुधुआ बिजली की गति से आक्रमण करने लगा तब मेमसाहब और उनके बच्चों ने ची-पोल्ह शोर मचाना शुरू कर दिया। कालोनी के दूसरे कुत्ते भी जोरों से भौंकने लगे।

सुधन हतप्रभ-सा खड़ा था। उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। मेमसाहब उसे जली-कटी सुनाए जा रही थीं। साहब का बड़ा लड़का गुस्से में आकर अपनी बन्दूक उठा लाया कि बुधुआ को शूट किए बिना नहीं मानेगा। टोनी के शरीर में कई जगह खरोंचें आ गई थीं और ख़ून रिसने लगा था। बुधुआ की एक टाँग में टोनी का एक जबड़ा लग गया था। दोनों अभी भी जूझ रहे थे। साहब के लड़के को बन्दूक लाते देख सुधन घबड़ा गया और एक छड़ी लेकर दोनों को अलग हटाने के लिए बरामदे से नीचे उतर आया। सुधन को छड़ी लेकर आते देख बुधुआ अहाता फाँदकर बाहर सड़क पर चला गया। किसी तरह जान बची।

साहब का लड़का आगबबूला हो रहा था और सुधन को भद्दी-भद्दी गालियाँ बकने लगा था "हरामजादे, कुत्ता पालता है और लाट बनता है ! आज से इस रोड पर तेरे कुत्ते को देख लिया तो गोली मार दूँगा···।" सुधन ने मन-ही-मन सोचा कि कह दे—"मैं कुत्ता पालता, हूँ तो तुम्हारे बाप का क्या जाता है ? तुमसे बुधुआ के लिए रोटी माँगने तो नहीं आते !" लेकिन डर के मारे उसकी जुबान नहीं खुली और वह चुपचाप साहब के लड़के की अनाप-शनाप सुनता रहा।

जान बचाने के लिए उसने मेमसाहब से पान का डिब्बा माँगा। लेकिन टोनी के उपचार में व्यस्त मेमसाहब को कहाँ फुरसत थी ! तभी साहब के बड़े लड़के ने स्कूटर निकाला और पान का डिब्बा लेकर सड़क पर निकल आया। सुधन समझ गया कि वह अभी दो मिनट में साहब के पास जा पहुँचेगा। सुधन भी दफ्तर की ओर चल पड़ा। रास्ते-भर वह बुधुआ के बारे में सोचता रहा। कुत्ते को देखकर साहब पता नहीं क्या-क्या करेगा। इस-लिए बुधुआ हालाँकि लँगड़ा रहा था और उसे चलने में कठिनाई हो रही थी। सुधन ने गुस्से में बुधुआ पर दो-तीन लातें जमाईं। बुधुआ काँय-काँय करने लगा। थोड़ी देर तक ईंट के टुकड़े मारते रहने के बाद बुधुआ भागा और डेरे की ओर चला गया। बुधुआ के चले जाने के बाद उसे थोड़ा इत्मीनान हुआ। करीब-करीब भागते हुए वह दफ्तर पहुँचा।

साहब गुस्से के मारे लाल हो रहे थे। उनका बेटा सुधन के पहुँचने के पहले ही दफ्तर पहुँचकर अपने डैडी को सब कुछ बता चुका था। साहब ने सुधन को खूब डाँट लगाई, भला-बुरा कहा। इसके बाद ड्राइवर से गाड़ी मँगवाई, सुधन को पीछे बिठाया, कोठी पहुंचे और टोनी को गाड़ी पर लाद-कर जानवरों के अस्पताल पहुँच गए। सुधन को याद आया, साहब उस दिन इतने व्यग्र नहीं हुए थे जिस दिन स्टाफ का एक आदमी मिर्गी के कारण दफ्तर में ही टाँय बोल गया था।

डॉक्टर ने टोनी की जाँच-पड़ताल की। दो-तीन पट्टियाँ बाँधी गईं और दवा लिखी गई। सुधन इस पूरे दौर में काफी व्यग्रता दिखाते हुए, अपराधी-सा मुँह बनाए साहब के पीछे-पीछे भागता रहा। फिर उसे अनायास बुधुआ की याद हो आई। बड़े लोग तो अपने कुत्तों को मांस खिलाते हैं, दूध पिलाते

हैं, हम तो अपने बुधुआ को दो रोटी भी नहीं दे पाते। मंगला को ही नहीं दे पाते तो बुधुआ किस खेत की मूली हुआ लेकिन फिर उसने सोचा कि यदि नौकरी करनी है तो बुधुआ को भगाना ही पड़ेगा।

दफ्तर से लौटते समय भी वह बुधुआ को लेकर ही चिन्तित था। क्या करे उसका? कहाँ भगा दे उसे? पर क्यों भगाये···? जिंजल साहेब की कोठी के गेट पर लटके साइनबोर्ड से उसकी आँखें टकराईं। तख्ती पर लिखा था—बिवेयर ऑफ डॉग। कुत्ते से होशियार। सुधन का मन घृणा से भर उठा। ये लोग कितने अमानवीय हैं। ये पैसे और कोठी वाले। इंसान से तो प्रेम करते नहीं, उस पर थूकते हैं···पास तक नहीं फटकने देते, और जानवरों से प्रेम करते हैं···।

लेकिन प्रेम भी कैसा! कुत्ता अपना हो तो प्रेम, पराया हो तो नफरत! इन्हें लगता है, ये पैसे वाले हैं, इसलिए जानवरों से भी प्रेम ये ही कर सकते हैं, कोई गरीब आदमी नहीं···सचमुच ये आदमी नहीं हो सकते···सारे-के-सारे विलायती कुत्ते हैं···आदमी को नोचने वाले कुत्ते और इनकी भलमनसियत तो देखो, 'कुत्ते से होशियार' की तख्तियाँ लगा रखी हैं!···ठीक तो है, हम जैसे अपने आदमियों को इन कुत्तों से ज़रूर होशियार रहना चाहिए···पूरे देश को इनसे होशियार रहना चाहिए···।

घर पहुँचकर बुधुआ को इन्तजार करते देख सुधन अचानक भड़क गया और लगा बुधुआ की पिटाई करने। लेकिन बुधुआ ने प्रतिरोध या पलायन के बदले आत्मसर्मपण कर दिया। पिटाई के बाद वह दिन-भर अन्न-दाना छोड़कर डेरे के सामने अठान पड़ा रहा।

रात को जब सुधन खाने के लिए बैठा तो उससे रहा नहीं गया। रोज की तरह उसने बुधुआ के लिए कौर निकाल दिया और अतू···अतू करके लगा बुधुआ को बुलाने। लेकिन बुधुआ नहीं आया। लगा, जैसे सुन ही नहीं रहा हो। सुधन ने मंगला से कौर भिजवा दिया, लेकिन बुधुआ ने रोटी के टुकड़े को सूँघने की बात तो दूर रही, उधर देखा तक नहीं। बात साफ थी कि बुधुआ अन्न-दाना छोड़ रहा था। सुधन का ठण्डा पड़ता गुस्सा और भड़क गया और वह बुधुआ को देखने भी नहीं गया कि उसे कहाँ-कहाँ चोटें आईं और वह जियेगा भी या मर जाएगा।

रात काफी देर तक सुधन को नींद नहीं आई। बुधुआ के बारे में ही सोचता रहा। बुधुआ को अब दफ्तर ले जाने का मतलब था, नौकरी से हाथ धो लेना। साहब को समझाना अब उसके बूते की बात नहीं थी। फिर कभी उसके मन में बुधुआ के लिए दया उभर आती। आखिर अब कहाँ जाएगा बुधुआ ? रात-भर जागकर भी सुधन, बुधुआ के बारे में कुछ निर्णय नहीं ले सका।

दूसरे दिन दफ्तर जाने के लिए सुधन तैयार हुआ तो देखा, बुधुआ ज्यों-का-त्यों उदास-मन चारों पल्ले चित्त पड़ा हाँफ रहा है। सुधन को देखकर कल तक वह कूदने-फाँदने लगता था, आज उसमें कोई सुगबुगाहट तक नहीं थी। हाँ, सुधन को देखकर उसने अपनी दुम जरूर हिलाई। सुधन हिकारत की एक नज़र बुधुआ पर फेंककर आगे बढ़ गया लेकिन वह पूरी गली भी पार नहीं कर पाया। उसके पैर अनायास थमने लगे। उसे अचानक महसूस हुआ कि बुधुआ को साथ लिए बिना वह पूरी तरह असुरक्षित है··· पुकार लगाने के लिए सुधन के होंठ स्वतः खुल गए।

पुकार सुनते ही बुधुआ पहले की-सी स्फूर्ति से उठा, तन को झिंझोड़ा और लँगड़ाते हुए ही, लेकिन तेज गति से दौड़कर सुधन के पास पहुँच गया।

रास्ता एक ही है और सुधन के पीछे-पीछे कालोनी की सड़क से बुधुआ अब भी रोज गुजरता है···

० ०

शेष सफर

बिहार और बंगाल के सरहदी इलाके को चीरती जब हमारी ट्रेन रामगढ़ा स्टेशन पर पहुँची, तो मैं बहुत खुश था। वर्षों पहले से इस जगह के बारे में तरह-तरह की कल्पनाएँ किया करता था और एक महीना पहले से ही इस नई जगह पर जाने के लिए तैयारियाँ शुरू कर दी थीं। इस नई जगह की प्राकृतिक छटा के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। राऊरकेला से ही दोनों ओर पहाड़ियों और जंगलों का जो सिलसिला बंधा था, वह अब भी टूट नहीं रहा था। ट्रेन की खिड़की से ही मैंने चारों ओर नज़र दौड़ायी। सचमुच इलाका मन को भा गया। मैंने अटैची से अपने कैमरे को निकालकर कन्धे से लटका लिया और सोचा कि उतरते-उतरते कुछ तस्वीरें खींच लूँगा। कुछ भाई की, कुछ पहाड़ियों की, कुछ आदिवासियों की। ट्रेन की चाल धीमी होने लगी थी और मैं अपना सामान ठीक-ठाक करके गेट पर जा खड़ा हुआ था। मेरी निगाह कुछ दूर से ही प्लेटफार्म पर खड़ी भीड़ पर लग गयी थी और मैं सोच-सोचकर बहुत खुश हो रहा था कि भाई कम्पनी की जीप लेकर कुछ दोस्तों के साथ मुझे लेने आया होगा और प्रतीक्षा में बैठा होगा। भाई को मैंने पहले ही पत्र लिख दिया था और उसने सारा कार्यक्रम तय करके मुझे भेज दिया था। मैंने फिर से उसे पत्र लिख दिया था कि मैं उसके निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार फलाँ तारीख को फलाँ ट्रेन से रामगढ़ा पहुँच रहा हूँ। एक सेकेंड के लिए यह बात भी दिमाग में कौंधी कि हो सकता है, वह अभी तक स्टेशन पर नहीं पहुँचा हो। लेकिन ऐसा तो हो ही नहीं सकता था। वह ज़रूर आ गया होगा और देर से ट्रेन आने की प्रतीक्षा में बैठा बोर हो रहा होगा, मेरा मन बार-बार ऐसा कह रहा था। मैं आगे से तीसरे डब्बे

में था, सो सोचा, गौर से देखूँ, कहीं वह भीड़ में खो न जाय या पीछे न छूट जाय। मैंने सोचा, उसे देखते ही जोर से आवाज़ लगाऊँगा और वह गाड़ी के साथ-साथ दौड़ जाएगा। ट्रेन प्लेटफार्म से सटकर साँप की तरह आगे सरकती जा रही थी और मैं भीड़ पर एकटक निगाह लगाकर अपने भाई को खोज रहा था। ट्रेन चरमराकर रुक गयी, तो अचानक मेरा ध्यान टूटा। भाई कहीं दिखाई नहीं दिया। सोचा, प्लेटफार्म की भीड़ में मेरी आँखें उसे देख नहीं पायी होंगी। छोटा रेलवे स्टेशन होने के नाते गाड़ी को ज्यादा देर रुकना भी नहीं था, सो मैंने फटाफट अपना सामान नीचे उतार लिया। एक ही साथ कई कूली दौड़े आए और मैंने सबको 'ना' कहकर हटा दिया कि मेरा भाई आ रहा होगा, तभी चलेंगे। मैं आते-जाते यात्रियों की भीड़ के बीच अपने सामानों पर बड़ी चालाकी से निगाह फिराते हुए प्लेटफार्म पर नज़रें दौड़ा रहा था कि कहीं भाई दौड़कर आता ही दीख जाए। लेकर, मेरी आँखें थक गईं। प्लेटफार्म की भीड़ छँटती गयी और ट्रेन भी आगे सरक गयी। चन्द मिनटों के बाद प्लेटफार्म पर इक्कु-दुक्के लोग बच रहे थे। मुझे खड़े-खड़े कोफ्त होने लगी। मैं मन-ही-मन काफी झुंझलाया भी। नई जगह नहीं होती तो शायद यह झुँझलाहट इतनी अधिक नहीं होती। मेरे मन में यकायक विचार आया कि यदि स्टेशन लेने नहीं आ सकता था तो लिख क्यों नहीं दिया कि मैं आऊँ ही नहीं? फिर सोचा, हो सकता है, ड्यूटी या बीमारी या किसी अन्य कारण से नहीं आया हो, या आने में देर हो गयी हो और अभी आता ही होगा। मन को हल्का करने के लिए माथे को झकझोरा और फिर पहाड़ियों के पीछे से डूबते लाल पिण्ड को देखने लगा। सूर्य की धीमी होती किरणें पहाड़ियों के ऊपर छाये बादल के टुकड़ों पर रंगीन पच्चीकारी कर रही थीं और मेरा मन इस प्राकृतिक सौन्दर्य में पल-भर के लिए बझ गया था। लेकिन, मुझे तुरन्त चिन्ता होने लगी। यदि भाई नहीं आ जाता तो उसके फैक्ट्री तक पहुँचने में तो कठिनाई होती ही। मैंने पहले कभी यह सोचा ही नहीं था अकेले रामगढ़ा से जे० के० पुर फैक्ट्री तक भी जाना पड़ सकता था। मुझे न रास्ते की जानकारी थी और न बाहर की। सो मैं दिक्कत में पड़ गया था। मैंने अपनी अटैची और बिस्तर खुद उठा लिए और स्टेशन मास्टर के

कार्यालय तक पहुँचा। वहाँ आठ-दस लोग पहले से ही खड़े थे। स्टेशन मास्टर उनसे बातचीत में फँसा हुआ था। उनकी भाषा को पकड़ पाना मेरे लिए संभव नहीं था। उड़िसा में पहुँच जाने की बात सोचकर मैंने महसूस किया कि वे सभी-के-सभी उड़िया भाषा में बात कर रहे थे। भीड़ के पीछे पतलून-शर्ट पहने एक आदमी खड़ा था। मैंने उससे ही पूछा कि रामगढ़ा से जे० के० पुर जाने का कौन रास्ता है और मुझे सवारी कब और कहाँ से उपलब्ध होगी। वह आदमी मुझे गुरेरने-सा लगा तो मैं डर गया। फिर वह कुछ बुदबुदाया। मेरे पल्ले तो एक शब्द भी नहीं पड़ा। मैं समझ गया कि हिन्दी में बात करने के कारण वह मेरी बात समझ ही नहीं पा रहा था। मुझे तो पसीना ही छूटने लगा। दूसरे चेहरों को तो देखकर ही पूछने की हिम्मत नहीं कर सकता था। क्योंकि वेश-भूषा से वे एकदम अनपढ़ लगते थे और यह बात तय थी कि वे हिन्दी नहीं जानते होंगे और उड़िया या तेलगू में बात करना मेरे लिए सम्भव ही नहीं था। फिर मैंने सोचा कि यह भीड़ छँट जाय तो स्टेशन मास्टर से ही पूछ लूँ। यदि वह भी हिन्दी नहीं जानता होगा, तो कम-से-कम अँग्रेजी तो ज़रूर जानता होगा। फिर इसी बहाने सोचने लगा कि संभव है, इसी बीच भाई आ पहुँचे। मैं भीड़ छँटने की प्रतीक्षा में अटैची पर एक पैर रखकर खड़ा हो गया था।

स्टेशन मास्टर भले आदमी लगे। इसके पहले कि मैं उनसे बातचीत करता, उन्होंने मुझे कुर्सी पर बैठने के लिए कहा। वे हिन्दी बोलने लगे थे। मुझे उन्हें हिन्दी बोलते देख बहुत खुशी हुई। वे उत्तर बिहार के थे और बिहारी होने के नाते उन्होंने मेरे लिए चाय भी मँगवा दी। मैंने अपनी समस्या उनको बताई। उन्होंने मुझे रास्ता बता दिया। रिक्शा पकड़कर बस डिपो जाना था और वहाँ से घण्टे-घण्टे-भर के अन्तर पर बसें खुलती थीं। उन्होंने अपने ही दफ्तर के एक पोर्टर को बुलाया, उड़िया में उससे कुछ बातें कीं और उसे मेरे साथ लगा दिया। वे प्लेटफार्म के बाहर मुझे रिक्शा तक छोड़ने आये। पोर्टर मेरे साथ बस डिपो तक आया। मुझे बस में बैठा-कर वह लौट गया।

कोई दस मिनट बाद बस खुली तो मेरा ध्यान टूटा। मैं बस में बैठते

ही फिर भाई के बारे में केंद्रित होकर सोचने लगा था और एकदम खो गया था। बस ऊबड़-खाबड़ सड़क पर खड़-खड़ करते हुए चल पड़ी तो बस की भीड़ की ओर मेरा ध्यान गया। बस पूरी तरह भर गयी थी। बस में मज़दूर की तरह दीखने वाले बहुत से आदिवासी भर गए थे। उनमें से अधिकांश के बदन पर कपड़े नहीं थे। वे अपनी भाषा में कुछ बतिया रहे थे। एक आदमी मेरी सीट के बगल में ही खड़ा था जो बार-बार बस के ओलार होने से मेरे शरीर पर भार बन जाता था। अड़तालिस घण्टे के लम्बे सफर में इतना थक गया था कि उसके मेरे शरीर पर ओलर जाने से बड़ी परेशानी महसूस हो रही थी। फिर भी, मुझे उससे कुछ कहते नहीं बनता था। सोचता था, बात भी समझ पाएगा या नहीं। मैंने उसके चेहरे पर गौर किया। उसके चेहरे पर परेशानी की रेखायें सहज भाँपी जा सकती थीं। फिर मैं बस की खिड़की से सड़क के साथ-साथ चलती पहाड़ी को देखने लगा। शाम का धुँधलका पसरने लगा था। पहाड़ियों की केवल ऊपरी काली आकृतियाँ ही नज़र आ पाती थीं। पहाड़ियों से कुछ ऊपर, काले बादलों के जाल के बीच हँसुआ के आकार का चाँद लुक-छिप रहा था। अचानक बस एक झटके के साथ रुकी तो मैं सँभल गया। लेकिन पीछे की सीट पर बैठे आदमी का सिर मेरी सीट से टकरा गया। शायद वह ऊँघ रहा था। मैं पीछे घूमकर उसे देखने लगा। फिर लगा, उसे कहीं देखा है। याद आया, यह वही पतलून वाला आदमी है, जिससे स्टेशन पर कुछ पूछा था और वह उड़िया में न जाने क्या-क्या बक गया था। बस की भीड़ अब भी तेज आवाज़ में गिट-पिट गिट-पिट बातें कर रही थी।

कनडक्टर ने जे० के० पुरम् की आवाज लगायी तो मैं समझ गया कि जे० के० पुर पहुँच गया हूँ। मैं सामान लेकर उतर गया। मैं जहाँ उतरा, वह एक गँवई बाजार का दृश्य था। झोपड़ियों में छोटी-छोटी दूकानें लगी थीं, जिनमें चाय-पान की दूकानों की संख्या ही अधिक रही होगी। दूकानों से छिटककर धीमी रोशनी खुरदुरी सड़क पर पसर गयी थी और उस रोशनी में आते-जाते लोगों पर नज़र गड़ाकर भाई को खोज रहा था। तब तक बस धर्राहट की आवाज के साथ चल दी। भाई का क्वाटर नम्बर वगैरह तो मेरे पास था, लेकिन वहाँ खड़ा होकर मैं अन्दाज नहीं लगा पा

रहा था कि क्वार्टर किधर थे और कितनी दूरी पर थे। तब तक कहीं आस-पास में जोरों का शोरगुल और फिर जय-जय की आवाज़ मेरे कानों में पड़ी। मैंने सोचा, कहीं कोई नाच-गाने का कार्यक्रम हो रहा होगा। फिर मैं एक चाय की दूकान पर बैठ गया। वहाँ बेंच पर कुछ लोग पहले ही से बैठे हुए थे और चिलम सुलगा रहे थे। वे बातें भी कर रहे थे और मैं यह देखकर कि वे निरी भोजपुरी में बातें कर रहे थे, यकायक बेतरह खुश हो गया था। सबसे पहले, मैंने एक मूँछ वाले आदमी से भोजपुरी में ही पूछा—

—कहाँ घर परी भाई जी ?

—छपरा जिला। राऊर ?—उस आदमी ने पूछा।

—आरा जिला।

—केकरा किहाँ आइल बानी ?

—रामा जी के भाई हई।

—ओ !—उस आदमी के चेहरे पर कुछ मिली-जुली प्रतिक्रियाएँ हुईं।

—उनकर क्वाटर केने पड़ी ?

वह एक पल तक कुछ सोचता रहा। फिर उसने बड़ी अन्यमन्यस्कता से हाथ सीधा करके बता दिया कि सीधी सड़क पकड़कर जाना है। फिर वह आदमी चिलम सुलगाने लगा। उस आदमी ने मेरे साथ न तो कोई सहानुभूति दिखाई और न ही कोई रुचि। मुझे अजीब लगा। भोजपुरी इलाके का आदमी होने के बावजूद, इतनी नीरसता, मुझे बहुत खल गयी। सामान उठाने चला तो फिर कानों में तेज आवाज़ आयी···जिन्दाबाद···। यह कई लोगों की संयुक्त आवाज़ थी और इस बार पहले की आवाज़ की अपेक्षा तेज सुनायी पड़ी थी। सामान उठाकर मैं चल ही रहा था कि पीछे की सड़क से घर्र-घर्राती एक लॉरी आयी और उस पर से धड़धड़ाकर गोरखा राईफलधारी जवान कूदने लगे। एक क्षण के लिए मुझे रोमाँच हो आया। अभी कुछ ही दिन पहले तो आपात्काल के जेल से मुक्त हुआ था और उन दिनों खाकीधारी राईफलधारियों को इसी तरह कूदते देखा करता था। मन में कुछ संशय उठा। क्या बात है। लेकिन, फिर बिना

कुछ आगे सोचे चल दिया। कैमरा अभी भी मेरे कंधे से लटक रहा था। एक हाथ में अटैची और दूसरे में बेडिंग लिए मैं अँधरे में सड़क का अन्दाज कर बढ़ता जा रहा था। आगे सड़क के किनारे उगी झाड़ियों से कुछ रोशनी दिखाई पड़ रही थी। मैं सावधानी के साथ बढ़ रहा था। सम्भल-सम्भल-कर, क्योंकि सड़क खुरदुरी थी और ठेस लग जाने की आशंका बनी हुई थी। फिर जोरों का नारा मेरे कानों में गूँज-सा गया…इनकिलाब… जिन्दावाद…मज़दूर एकता…जिन्दाऽऽबाद। मैं चौंक गया। मुझे लगा कि यहाँ कुछ गड़बड़ ज़रूर है। फिर मैं तेजी से बढ़ने लगा। सड़क की बायीं ओर कुछ लालटेनें जल रही थीं और वहाँ कुछ लोगों की भीड़ दीख रही थी। मैंने अनुमान लगाया कि नारे यहीं से लग रहे होंगे। मैंने सड़क पर चलते-चलते गौर किया तो लगा कि यह फैक्ट्री का मुख्य गेट होगा। अचानक मेरे नाक के नथुनों में एक तीखी दुर्गन्ध भर गयी। मैंने समझ लिया कि फैक्ट्री के नज़दीक ही हूँ और नाले से फैक्ट्री का दुर्गन्ध-भरा पानी बह रहा था, जिसकी बदबू मेरे नथुनों में भर रही थी। मैं रुका नहीं और आगे बढ़ता गया। अब मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि सड़क कहाँ कितनी दूर तक आगे जाती है और क्वार्टर किधर हैं। क्योंकि, क्वार्टरों से रोशनी-वोशनी तो ज़रूर आती, सो रोशनी का कहीं ठिकाना ही नहीं था। मैं बड़ा असमंजस में पड़ गया था। कहीं उस मूँछ वाले आदमी ने गलत रास्ता तो नहीं बता दिया? सामान टाँगे रहने के कारण मेरे दोनों बाजू भी दर्द करने लगे थे। मैं पल-भर रुका, हाथ बदली की ओर फिर बढ़ने लगा।

'हाल्ट' एक कर्कश तीखी आवाज़ सुनकर मैं काँप गया और मेरे हाथ की अटैची छूट गयी। मैं ऊपर से नीचे तक सिहर गया। मेरे शरीर के सारे रोएँ खड़े हो गए। मैं थर्र-थर्र काँपने लगा। दिमाग में शून्य भर गया। अचनाक समझ में ही नहीं आया कि क्या करूँ, क्या कहूँ! लेकिन पल-भर बाद ही जेल के वार्डरों द्वारा 'हाल्ट' और 'दोस्त' के शब्द-विनिमय की बात दिमाग में आ गई। मेरा प्रत्युत्पन्नमतित्व काम कर गया और मैंने साहस बटोरकर जोरों से कहा—दोस्त।

एक आकृति मेरे पास आ गयी। वह अँधेरे में छुपकर बैठा था और

मैं उसे देख नहीं पाया था। वह राईफलधारी था।

—कौन हो ?

—मैं बाहर से आ रहा हूँ। मेरा भाई यहाँ फैक्ट्री में काम करता है।

--मैं अब भी थरथरा रहा था।

—किस क्वाटर में जाना है ?

—एन० डी० में···।

—साथ में क्या-क्या है ?

—जी, बस एक अटैची और एक बेडिंग···बस।

—ठीक है, सीधे जाओ। आगे भी लोग मिलेंगे। उन्हें भी बता देना···।

उसने लगभग डाँटते हुए मुझे बताया।

मैं अपना समान लेकर सड़क पर आगे बढ़ गया।

अभी कुछ ही डेग आगे बढ़ा था कि एक आदमी ने फिर आवाज़ लगायी—कौन है ?

—मैं हूँ।

—मैं कौन ?

—एन० डी० में जाना है। बाहर से आया हूँ।

वह आदमी करीब आ गया। उसके हाथ में लाठी थी। उससे अनुमति लेकर मैं आगे बढ़ा। कुछ गज आगे चलने पर फिर एक राईफलधारी मिला। उसने भी पूछाताछ की। मैंने उसे सब कुछ बता दिया। फिर मैंने एन० डी० का रास्ता पूछा। उसने मुझे बताया कि सड़क दायीं ओर मुड़ रही है। यह सड़क मुख्य सड़क से जुड़ती हुई एक पतली सड़क थी। मैं उस सड़क पर आगे बढ़ा। फिर एक सिपाही मिला। जिसने मुझसे कुछ नहीं कहा। वह हाथ में कोई चीज़ लिए गश्त लगा रहा था। इस बार मैंने ही एन० डी० के बारे में पूछा। उसने बताया कि मैं एन० डी० के ठीक सामने पहुँच गया था। वहाँ भी बिलकुल अँधेरा था। पूरा इलाका अँधकार की गोद में भयावह लग रहा था। मैंने सिपाही से पूछा—बिजली नहीं है क्या ?—बिजली गुल है। उसने एक सूखा-सा जबाव दिया।

मैं टो-टोकर आगे बढ़ रहा था। तभी कंटीले तार में मेरा कुरता फँस-

कर फट गया। अन्दाज पर एक दरवाज़े के सामने गया। दरवाज़ पर दस्तक दिए। एक बार नहीं, कई बार कुंडी हिलाया। लेकिन अन्दर से कोई आवाज़ ही नहीं आयी। फिर, मैंने भाई का नाम लेकर पुकारा। फिर भी कोई जवाब नहीं मिला। मैं अब कहाँ जाता। बड़ी चक्कर में फँस गया था। कभी-कभी खुद को कोसता कि बेकार का यहाँ चला आया। क्या पत्रिकाओं में रपट लिखने के लिए इससे भी अधिक पिछड़ी कोई जगह नहीं मिल सकती थी? मैं भाई को भी कोस रहा था। मेरी क्या हालत बना दी। अब से कान ऐंठता हूँ जो फिर कभी आया। मैंने फिर आवाज़ दी, काफी जोर से और किवाड़ पर जोर से हाथ मारा। तभी भीतर से आवाज़ आयी—घर में नहीं हैं। यह कोई लड़की की आवाज़ थी।

मैंने आग्रहपूर्वक कहा—देखिए, मैं रामा जी का बड़ा भाई हूँ। बहुत दूर से आ रहा हूँ और परेशान हूँ। ज़रा किवाड़ तो खोलिए।

—भाई हैं तो मैं क्या करूँ? उनके कमरे में तो कई दिनों से ताला पड़ा हुआ है। वे आते भी नहीं।

मैं उस लड़की की बात सुनकर स्तब्ध रह गया। मुझे भाई की चिन्ता सताने लगी। आखिर वह कहाँ गया? कहीं घर तो नहीं चला गया? कहीं वह···मेरे जेहन में एक ही साथ सैकड़ों आशंकाएँ काँटे की तरह चुभने लगीं। मैंने फिर कहा—अच्छा, ज़रा मेरा सामान तो रख लीजिए···। दरवाज़ा खोलिए ना! मेरे बहुत कहने पर लड़की ने दरवाज़ा खोला। वह हाथ में लालटेन टाँगे रही थी। मैंने सामान दरवाज़े के अन्दर कर दिया। फिर मैंने उस लड़की से जानना चाहा कि भाई किस कमरे में रहता है। लड़की ने इशारा करके मुझे बताया। सचमुच उसके कमरे से ताला लटक रहा था। मैंने फिर उससे पूछा कि भाई के कौन-कौन से दोस्त हैं जिनसे उसके बारे में जानकारी मिल सकती है। अभी मैंने यह पूछा ही था कि भाई के सामने वाले कमरे से एक मर्द निकल आया और उसने मुख्य दरवाज़ा बन्द कर दिया। फिर उसने मुझे बताया कि फैक्ट्री में हड़ताल चल रही है और रामा पिछले कई दिनों से गायब है। कम्पनी हड़ताल तुड़वाने की हर सम्भव कोशिश कर रही है। यहाँ तक कि बिजली लाइन काटकर पूरी बस्ती को श्मशान बना दिया गया है। और कम्पनी के गुंडे और

सिपाही-दारोगा आकर जबरन लोगों को घर से खिचकर ले जाते हैं और फैक्ट्री में काम करने को कहते हैं।

उसने बताया—'मैं तो सोच रहा था कि आप भी पुलिस वाला हो, इसीलिए मैंने खुद दरवाज़ा नहीं खोला, पत्नी को भेजा, समझे दादा ? बुरा नहीं मानना। बड़े बुरे दिन आ गए हैं! किसी के जान-माल की कोई सुरक्षा नहीं है। चारों ओर आतंक छाया हुआ है। अब तो यहाँ रहने का जी नहीं होता···।' वह एक सुर में इतनी बातें कह गया।

मैंने भाई के बारे में पूछा। उसने भाई के कई दोस्तों के नाम बताये और उनके क्वार्टरों के नम्बर भी···तीसरा···पाँचवाँ, छठा, आठवाँ, दसवाँ नम्बर···। मैंने उससे साथ चलने को कहा तो वह एकदम नकार गया। मैं बहुत चिन्तित हो उठा था और अब भाई के बारे में पूरी जानकारी लिए बिना एक पल भी बैठ नहीं सकता था। सो मैंने सामान वहीं छोड़ दिए। जाते-जाते उस आदमी ने कहा—'रात को ऊपर ही रह जाना दादा! ज्यादा रात गए आना-जाना ठीक नहीं···। मेरे निकलते ही उसने अपना दरवाज़ा बन्द कर लिया।

मेरे दिमाग में तनाव ही तनाव था। सोचा, अब डरने से तो काम चलेगा नहीं। भाई के बारे में पूरी जानकारी लेने के लिए मैं बेताब हो रहा था! फिर मैंने अपनी जेब से सिगरेट निकालकर जला ली और उन क्वार्टरों की ओर बढ़ गया, जिनमें भाई के निकट के दोस्त रहा करते थे। मैंने माचिस की तिल्ली जलाकर तीन नं० के क्वार्टर पर दस्तक जमाया। कई बार कुंडी बजाई, लेकिन, कोई आवाज नहीं आयी। फिर, जोर-जोर से धक्का देता रहा। फिर किसी महिला की आवाज़ आयी। मैंने दरवाजा खोलने को कहा तो वह बोली कि घर में कोई नहीं है। मैंने भाई के बारे में पूछा तो वह झल्लाकर बोली—कहा न, घर में कोई नहीं है। मैं हताश होकर दूसरे क्वार्टर में गया। वहाँ भी किवाड़ पर थाप जमाए। कुछ देर तक आवाज़ नहीं आयी, लेकिन मैं किवाड़ बजाता रहा। फिर किसी महिला की आवाज़ और वही जबाब कि घर में कोई नहीं और दरवाजा नहीं खुलेगा। मैंने भाई के कई मित्रों के क्वार्टरों पर थपकियाँ लगायीं। कुछ से तो आवाज ही नहीं आई और कुछ क्वार्टरों से औरतों ने वही सूखा

जवाब दिया कि घर में कोई नहीं है।

मैं यह सब देखकर दंग था और बिल्कुल हताश हो गया था। मैं अब सोच रहा था कि यहीं किसी के क्वाटर के अगवारे सोकर रात बिता दूँ और सुबह भाई की खोज करूँगा। लेकिन भाई का दर्द मन के अन्दर उफान मार रहा था जिसे काबू में रख पाना आसान नहीं था। मैं थक भी बहुत गया था और अनिश्चिता काट-काटकर मुझे और थका रही थी और हताश कर रही थी। लेकिन मैं फिर आगे बढ़ गया। मेरे पैर स्वतः दस नं० क्वाटर की ओर बढ़ गये। आठवें क्वाटर के बाद एक मकान छोड़कर मैं दसवें क्वाटर में पहुँचा और किवाड़ पर थपकी लगा दी। पहली थपकी पर ही अन्दर से आवाज़ आयी—कौन? यह किसी पुरुष की आवाज़ थी। मैंने अपना नाम और परिचय बताया कि मैं रामा का भाई हूँ और बिहार से आया हूँ। फिर कुछ क्षण तक कोई जवाब नहीं आया। फिर अचानक दरवाज़ा झटके से खुला और मेरी बाँह पकड़कर किसी ने मुझे अन्दर खींच लिया। फिर किवाड़ उसी झटके के साथ बन्द हो गया। उस आदमी ने मुझे खड़े रहने के लिए कहा। फिर वह लालटेन जलाया और मेरे पास आ गया। मैं उसे भौंचक आँखों से देखता रहा। मेरी नज़र उसके सिर पर बँधी उजली पट्टी पर सबसे पहले गयी और मुझे यह समझते देर नहीं लगी कि यह आदमी थोड़ा साहसी है और हड़ताल में किसी मुठभेड़ का शिकार है। उसने मुझे चारपाई पर बैठने को कहा। वह मेरे सामने ही कुर्सी लगाकर बैठ गया और लालटेन को मेज़ पर रख दिया। फिर वह मुझे निश्चित होकर बैठने के लिए कहकर, अन्दर चला गया।

कुछ देर में वह चाय का प्याला लेकर आ गया और उसके आते ही मैंने रामा के बारे में पूछ दिया। उसने बताया कि रामा जहाँ भी है, ठीक है और मुझे घबराने की कोई ज़रूरत नहीं है। अब जाकर मेरी जान में जान आयी। मैं बिना कोई औपचारिकता निभाये, चारपाई पर लेट गया। उसने मेरे सामान के बारे में पूछा और मैंने उसे बता दिया। फिर वह मुझे आराम से लेटने के लिए कहकर सामान लाने चला गया। उसके कहे अनुसार, मैंने दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया। चारपाई पर जैसे ही आकर लेटा वैसे ही कई बूटों की चरमराहट एक साथ कानों में पड़ी। मैं

संशय में डूबने-उतराने लगा, कि कहीं वे लोग उसे पकड़कर ले तो नहीं गए। लेकिन, वह थोड़ी ही देर में मेरा सामान लेकर चला आया और तब मैं और ज्यादा निश्चित हो गया कि मैं अब जाकर ठीक जगह पर पहुँचा हूँ।

काफी रात गए तक हम दोनों, अगल-बगल लेटे बातें करते रहे, फुसफुसा-फुसफुसाकर। उसका उपनाम शुक्ला था। वह कानपुर का रहने वाला था। हड़ताल के पहले ही दिन, फैक्ट्री के गेट पर नारे लगाते समय जो लाठी-चार्ज हुआ था। उसमें उसका सिर फट गया था। कई मज़दूर धाराशायी हो गए थे, लेकिन फिर भी मज़दूर पीछे नहीं हटे थे। शुक्ला की गिरफ्तारी नहीं हो सकी थी। दो-चार दिनों तक उसके घर छापे पड़ते रहे थे, लेकिन वह लापता रहा था। फिर चुपके से आकर क्वाटर में रह रहा था। हड़ताल बोनस के लिए हुई थी। आपात्काल में बोनस में जो सरकारी घोषणा के तहत कटौती कर दी गयी थी, उसे आपात्काल समाप्त होने के बाद कम्पनी बनाए रखना चाहती थी। मज़दूर आग्रह करके थक गए थे। अन्ततः वे नोटिस देकर हड़ताल पर उतर आए थे। हड़ताल तोड़ने के लिए पहले तो कम्पनी ने गुंडों का सहारा लिया, फिर, पुलिस की भानें आने लगीं। मज़दूरों और कर्मचारियों को वे लोग घरों से खींच-खींचकर ले जाने लगे। तब मोर्चा बदल दिया गया। तब मज़दूरों की ओर से जंगलों से लकड़ी और बाँस के गट्ठरों का आना बन्द हो गया। कारखाने के मज़दूर जंगलों में फैल गए और बाँस काटने और जमा करने के जितने भी केंद्र थे, उनपर हड़तालें हो गयीं। हाथियों के पिलवानों ने भी हड़ताल कर दिया। मज़दूरों ने बाँस कटवाने वाले ठीकेकारों को भगा दिया। सड़कें कई जगह काट दी गयीं, ताकि ट्रकों का आना-जाना रुक जाए। सायरन का चीखना अन्ततः बन्द हो गया। लम्बी ऊँची चिमनियों ने धुआँ उगलना बन्द कर दिया। बायलर का जलना बन्द हो गया। भट्ठी ठण्डी पड़ गयी। कागज़ का बनना रुक गया। सरकार को यह चिंता सताने लगी कि संविधान में संशोधन करने के लिए या अध्यादेश जारी करने के लिए या अखबारी वक्तव्य देने के लिए, या सिफारशी पत्र लिखने के लिए या मत-पत्र छापने के लिए या नोट जारी करने के लिए या लाटरी टिकट जारी करने के लिए

या जाँच कमीशनों की कार्रवाई चलाने के लिए या फिर गाँधी जी की तस्वीरें छापने के लिए कागज़ कहाँ से आएगा···? आखिर कहाँ से आएगा···?

भाई हफ्ते-भर से जंगलों में घूम रहा था। हफ्ते-भर के बीच शुक्ला के पास उसका मात्र एक पत्र आया था। वह भी किसी गुप्त दूत के द्वारा। शुक्ला ने वह पत्र मुझे दिखाया भी। उस पत्र को आसानी से नहीं पढ़ा जा सकता था। वह दूध की स्याही से लिखा पत्र था, जिसे लालटेन के सामने रखकर शुक्ला ने मुझे पूरा पत्र पढ़ाया था। पत्र में भाई ने लिखा था कि जंगल में काम करने वाले चौदह हज़ार मज़दूर फैक्ट्री के मज़दूरों के साथ अपने अधिकारों के लिए मर-मिटने पर तैयार हैं और चन्द दिनों में स्थिति विस्फोटक हो जाने की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। भाई का पत्र पढ़कर मुझे गर्व तो ज़रूर हुआ, लेकिन चिन्ता भी बहुत बढ़ गयी। रात में बातें करते-करते पता नहीं कब, हमें गहरी नींद लग गयी।

अचानक हम दोनों एक ही साथ उठ बैठे। किवाड़ पर कोई जोर-जोर से धक्के लगा रहा था। मैं किवाड़ की ओर बढ़ा तो शुक्ला ने मेरी बाँह पकड़कर मुझे रोक दिया। फिर मेरे कान में वह फुसफुसाया और अन्दर की ओर चला गया। वे लोग अब अपनी बूटों से किवाड़ पीट रहे थे और गालियाँ दे रहे थे। मैंने बहुत हिम्मत करके किवाड़ खोल दी। एक ही साथ कई टार्च जले और कमरे में तेज़ रोशनी भर गयी। वे संख्या में कई थे। अधिकांश वर्दी में थे और राईफलें लटका रखे थे। कुछ सादे ड्रेस में भी थे। सादे ड्रेस वालों में से मैं दो को आसानी से पहचान गया। एक आदमी वह पतलून वाला था जो बस में मेरे साथ आया था। दूसरा आदमी वह जो चाय की दूकान पर बैठकर चिलम सुलगा रहा था। कुछ और लोग थे, जो सादे कपड़े पहन रखे थे। बाकी लोग पुलिस की वर्दियों में थे! राईफल वाले जवान गोरखे थे। मूंछ वाले आदमी ने मुझसे बड़ी बदतमीजी से शुक्ला के बारे में पूछा। मैंने बिलकुल अनभिज्ञता प्रकट की। फिर वे उनमें से कुछ अन्दर चले गये और शुक्ला को ढूँढ़ते रहे। एक वर्दीधारी, जो डील-डौल से कोई पुलिस पदाधिकारी लगता था, मुझ से तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगा।

—तुम कौन हो ?

—मैं रामा का भाई हूँ।

—रामा साला कहाँ है ?

—मैं तो आज ही आया हूँ···।

—तुम यहाँ क्यों आए हो ?

—भाई से मिलने···

—तुम्हारा कैमरा कहाँ है ?

—जी यही तो है। मैंने मेज़ पर रखे कैमरे की ओर इशारा किया।

पुलिस पदाधिकारी ने कैमरे को उठा लिया। उसे खोलने को कहा। मैंने कैमरा खोलकर रख दिया। उसने कैमरे से रील निकाल ली। और कैमरा भी ले लिया।

—यह मेरा कैमरा है ! मैंने साहस बटोरकर कहा।

—कैमरा यहाँ क्यों लाए हो ?

—यूँ ही, बाहर जब भी जाता हूँ, कैमरा ले ही लेता हूँ।

—इसलिए कि अखबारों और पत्रिकाओं में फोटो सहित हड़तालों की खबरें छपवाओ, यही न ?

—मैं तो जानता भी नहीं था कि यहाँ हड़ताल चल रही होगी ?

—तुम साले पत्रकार लोग सब जानते हो···।

—तुम्हारी कलम कहाँ है ?

मैंने अपनी कलम उसे सौंप दी। उसने मेज पर पटककर मेरी कलम की नीब तोड़ दी। फिर कलम को फेंक दिया।

जाते-जाते उसने कड़ी धमकी दी—यदि साले सुबह होने के पहले जे० के० पुरम् नहीं छोड़ देते, तो समझ लेना···। वह कैमरा पटककर चला गया। वे सभी चले गए। मुझे, शुक्ला के बारे में चिन्ता हो रही थी कि वह कहाँ गया, कैसे गया और उनकी गिरफ्त से कैसे निकल गया।

अब मैं अकेला था। रात काफी गहरा चुकी थी। मेरी नींद न जाने कहाँ उड़ गयी थी। तनाव से बचने के लिए मैंने फिर सिगरेट सुलगा ली थी। अभी आधी सिगरेट भी नहीं पी थी, कि कानों में शोरगुल की आवाज़ें आने लगीं। शोर लगातार बढ़ती ही जा रही थी। शोर और नजदीक होती

जा रही थी। अभी आध घण्टे भी नहीं बीते होंगे, कि पूरे वातावरण में हलचल-सी मच गयी थी। लगने लगा, कोहराम मचा है। आसपास के क्वार्टरों से ठक-ठक की आवाजें भी होने लगीं। मैं खिड़की पर चला गया। खिड़की खोलकर देखने लगा तो देखता ही रह गया। आँखें खुली की खुली रह गयीं। पूरे इलाके में उजाला हुआ जा रहा था। असंख्य हाथों में मशालें तनी थीं, जो फैक्ट्री के गेट पर एकत्र हो रही थीं। जोशीले नारे लग रहे थे, गगन-भेदी नारे। जैसे महाभारत का युद्ध छिड़ा हो। अगल-बगल के क्वार्टरों के लोग अपने क्वार्टरों से बाहर निकल रहे थे। मैं भी बाहर चला आया। क्वार्टरों के लोग भी फैक्ट्री गेट की ओर बढ़ने लगे। मैं भी उनके साथ बढ़ जाता हूँ। देखता क्या हूँ, फैक्ट्री मशालों से घिर गयी है। हज़ारों माशलें एक ही साथ ललकार रही हैं···हम हैं तो कारखाना है···सिंहानियाँ वापस जाना है···

क्वार्टरों के लोगों की भीड़ के साथ, मैं भी आगे बढ़ रहा हूँ। लोग बातचीत कर रहे हैं, कि जंगलों के मज़दूरों ने मशाल लेकर पूरे इलाके को घेर लिया है और उन्होंने जंगल के सभी लट्ठ केंद्रों को जलाकर राख कर दिया है।

कुछ लोग पीछे मुड़कर देख रहे हैं, पहाड़ी के बीच से पंक्तिबद्ध होकर सैकड़ों लोग मशाल जलाए, डंका बजाते हुए फैक्ट्री की ओर चले आ रहे हैं और गगन-भेदी नारे लगा रहे हैं।

क्वार्टरों से औरत-मर्द सभी निकल आए हैं, और अभी भी नारे लगा रहे हैं। वे लगातार फैक्ट्री की ओर बढ़ते जा रहे हैं। मेरे हाथ भी स्वत: उठ जाते हैं और मैं भी उनके जुलूस में शामिल हो जाता हूँ।

कभी-कभी नारे की गूंज रुकती है तो भाई रामा की याद आ जाती है और अलग-बगल चारों तरफ, जिधर भी देखता हूँ, लगता, सभी रामा ही तो हैं···।

० ०

मैं बाबूजी नहीं

उसकी इच्छा होती है कि इस ढ़ोल को इतना पीटे, इतना पीटे कि इसकी चादरें फट जाएँ और वह फिर कभी नहीं बजे। लेकिन वह यह भी जानता है कि उसके जैसे तबाह लोगों की इच्छाओं का कोई व्यावहारिक धरातल नहीं होता और वह मन मसोसकर रह जाता है।

'कुछ पैसे दीजिए बाबूजी ! चार काँपियाँ लानी है, 'उनके' लिए नहाने का साबुन और अपने लिए जूते के फीते···' वह बाबूजी से कहता है। बाबूजी उबल पड़ते हैं। उनके अन्दर उसके प्रति जमाने-भर का जो गुस्सा भरा होता है, उसका स्त्रोत फूट जाता है। वे लगातार बरसते जाते हैं। भद्दी-भद्दी गालियों पर उतर आए। वह एक शब्द भी बोल नहीं पाया। वह कहना तो बहुत कुछ चाहता था, कि यदि साबुन के पैसे नहीं दे सकते, तो शादी क्यों कर दी, कि सिनेमा देखने के लिए पैसे थोड़े न माँग रहा है वह, लेकिन उसमें हिम्मत नहीं होती। वह चुपचाप सब कुछ सुनता गया। बाबूजी गुस्से और बेचैनी के बवंडर में आँगन के चक्कर काटते रहे।

उसे बाबूजी पर बहुत गुस्सा आता है। यह जानने के बावजूद कि उनके पास पैसे नहीं होंगे, कि मन्दिर का मालिक उनसे दिन-भर पूजा के श्लोक पढ़वाता है, झूठ को सच और सच को झूठ बोलवाता है, कचहरी के लंदफंदिया काम कराता है, मकानों और दूकानों के किराए वसूल कराता है, तकादा कराता है, बिजली और टेलीफोन के बिल जमा करवाता है, सब्जी और फल मँगवाता है, सूद के पैसे वसूल कराता है, बच्चों को खेलवाता है और गू-मूत भी करता है और बदले में देता क्या है—महज एक सौ तीस की तनख्वाह और 'पण्डितजी' नाम का सम्बोधन ! बस ! और

उसे आश्चर्य तो इस बात का होता है कि उसके बाबूजी दिन-रात उसके लिए खून-पसीना बहाते हैं, अपना ईमान बेचते हैं, फिर भी एक सौ तीस की तनख्वाह पर ही संतोष कर लेते हैं। वे कहा करते हैं—'काम कितना भी कराए, इज्जत तो देता है···पण्डितजी कहता है···' पण्डितजी शब्द के सम्बोधन के पीछे वह जितना बड़ा षड्यन्त्र रचता है, बाबूजी उतना ही बड़ा स्वामी भक्त बन जाते हैं। खैरियत यह है कि उसका आधा परिवार गाँव में रहता है, वरना एक सौ तीस की तनख्वाह पर किसी की क्या मजाल, जो शहरी खर्चों के बीच परिवार चला ले।

वह मानसिक ऊहापोह से अभी मुक्त नहीं हो पाता कि कोई सज्जन गली में साइकिल की घण्टी टुनटुनाते हैं। 'रमेश जी हैं क्या ?'

—'कहिए क्या बात है ?' वह दरवाज़े से बाहर आकर पूछता है। वह सज्जन को पहचानने की कोशिश करता है। उसे याद आता है। सज्जन एक बार बेरोज़गार संघ की जुलूस में उसके साथ-साथ नारे लगाते हुए प्रदर्शन में भाग लिए थे और जब पुलिस ने लाठी-चार्ज किया था, तो मैदान छोड़कर भाग गए थे। इस बार वह गिरफ्तार कर लिया गया था और इतने दिनों के बाद, उनसे यह उसकी पहली मुलाकात हो रही थी।

सज्जन हाथ मलते होते हैं। अपने चेहरे पर वे एक बनावटी हँसी बिखेरते हैं और गिड़गिड़ाने की मुद्रा में कहते हैं—'एक काम था रमेश जी ! बीस बोरा सिमेंट की परमिट करा दीजिए ना···।' वे फिर मुस्कराते हैं—जैसे उस पर किसी ने एक बोरसी अँगार फेंक दिया हो। वह अन्दर-ही-अन्दर जल-भुन जाता है। वह चाहता है कि उस आदमी को डाँटकर भगा दे और उससे दो टूक कह दे कि उसे न तो उसके कीमती वोट चाहिए और न ही उसके द्वारा आयोजित जुलूसों में उनकी उपस्थिति। लेकिन वह कुछ भी कह नहीं पाता। पता नहीं कौन-सी अदृश्य शक्ति है, कौन-सा बड़ा लोभ का पाप है, जो उसकी जुबान खुलने नहीं देता। वह बहाना बनाता है—'कल चलूँगा, आपको घर से बुला लूँगा। चिन्ता नहीं करेंगे।' वे लौट जाते हैं। रोज ऐसे ही अखोर-बखोर उसके पास जुटते रहते हैं ! उसके बाबूजी उन्हें उसके दामाद की उपाधि दे रखे हैं। कोई कहता है, नम्बर कम हैं, आप चाहोगे तो स्कूल में दाखिला मिल जाएगा, कोई कहता

है फलाँ प्रोफेसर के पास फलाँ विषय की काँपी आयी है, एप्रोच कर दीजिए न, कोई कहता है, क्लर्की का आवेदन दिया है, ज़रा एस० डी० ओ० के पास चलना है, कोई कहता है, दो-चार सौ ले-देकर भी थाना से ही मुकदमा खत्म करा दीजिए न, कोई कहता है, कला पूजा के लिए चन्दा करवा दीजिए न और कोई-कोई तो यहाँ तक कहता है कि थोड़ा स्मगलिंग का विदेशी माल है, खपत करा दीजिए न ! वह ऐसे लोगों से परेशान रहा करता है। वह ऐसे लोगों से घृणा करता है। वह लगातार सोचता रहता है कि समाज में चल रहे इस गोरख धन्धे के लिए कौन ज़िम्मेवार हैं ? क्यों वे लोग उसके पास अपने कामों के लिए दौड़ लगाया करते हैं। तो क्या एक ही साथ सारे लोग गलत हो सकते हैं, वह इस विषय पर बहुत गम्भीरता से सोचा करता है। वह सोचता है कि क्यों सभी लोग महज अपने कामों के लिए उसके पास आते हैं। सभी अपने काम की ही बात करता है। कोई यह क्यों नहीं पूछता कि आपके यहाँ आज खाना नहीं बना होगा, ज़रा खा लीजिए ?

उसके बाबूजी थककर खाट पर बैठ जाते हैं। वह उनके सामने जाकर खड़ा हो जाता है। यह सोचकर कि इतना कहने-सुनने के बावजूद, सम्भव है, पैसे दें। बाबूजी अपनी जेब टटोलते हुए कहते हैं—'कौन दामाद आए थे ? क्यों नहीं माँग लिए पैसे ?' बाबूजी का व्यंग उसे छिलकर रख देता है। बाबूजी के हाथ जेब से स्वतः बाहर निकल आते हैं। वह समझ जाता है कि बाबूजी की जेब खाली है और वह झटके से मुड़कर चल देता है। कमरे में घुसता है। वहाँ ढोल मिल जाती है। पूछती है—'लाए साबुन ?' 'नहीं' वह एक छोटा-सा जवाब दे देता। 'लेकिन शरीर बदबू कर रहा है···? वह कहती है। 'तो जाकर बाबू जी से सुँघाओं कि शरीर बदबू कर रहा है···।' वह गुस्सा में कहता है। ढोल चुप, वह भी चुप। कमरे में काट खाने वाली खामोशी तैरती है। वही खामोशी, जो बवण्डर समाप्त होने के बाद महसूस की जाती है।

बाहर से कोई आवाज़ लगाता है। वह बाहर आता है। तनाव से कटते मत्थे को हाथ से दबाए हुए। उन्हें देखकर वह चेहरे पर बनावटी हँसी बिखेरता है। कालेज के दो अन्तरंग मित्र होते हैं। उन्हें घर के अन्दर नहीं

ले जाता। बाबूजी दामाद का उद्धरण देने लगते, इसी डर से उन्हें लेकर वह बाहर ही निकल जाता है।

—'आज खर्चा करोगे न रमेश?' एक मित्र पूछता है।

'किस खुशी में?'

'शादी कर लिए, बताए भी नहीं और पूछते हो साले, किस खुशी में?'

'शादी मैंने नहीं की यार! बाबूजी ने गले से ढोल लटका दिया।' वह एक सूखा-सा जावब देता है।

'उससे क्या होता है। बीवी तो घर में आ गयी न? खर्च तो करना ही होगा।' उनमें से एक कहता है। नहीं इच्छा होने के बावजूद वह हँसता है। वह यह महसूस भी करता है कि कितनी निरीहता और बेबसी छिपी है, उसकी इस हँसी में···वह हँसता है तो ये ठहाके लगाते हैं। वह उन्हें लेकर एक चाय की दूकान में प्रवेश कर जाता है।

'तीन चाय बलेसर।' वह चाय वाले से कहता है। चाय पीकर वे चल देते हैं।

'पैसे···?' बलेसर पूछता है।

'बाकी रहेग, लिख लेना···।' वह कहता है।

'आपका उधार कभी नहीं मिलता रमेश जी! शादी में छेना गया था, लेकिन पैसे आज तक नहीं मिले।' बलेसर एतराज प्रकट करता है। वह खामोश है, जैसे दिल पर हथौड़ा चल रहा हो। मित्र हँसते हैं—'साला जाली है···जाली, कंजड़ नम्बर वन···' उनमें से एक अपनी पैण्ट की पिछली जेब से एक अठन्नी निकालकर बलेसर के सामने फेंक देता है। जैसे, उसके अस्तित्व पर उसने पचास पैसे का एक गर्म लाल सिक्का चिपका दिया हो और वह तिलमिला जाता है।

उन्हें छोड़कर उदास मन वह घर लौटता है। सोचता है, साले चाय वाले ने इतना कुछ कह दिया, सबके सामने। हरामी कहीं का···। पहले डरता था और कुछ नहीं कहता था। अब तो मोहताब टेलर मास्टर भी टोक सकता है। शादी के कपड़ों की सिलाई के साठ रुपये बाकी हैं। कालू के करीब पचास रुपये सिगरेट के बाकी हैं। शादी में दोस्त-मित्र तो सिगरेट

पी तो गए। अब कौन पूछता है कि जी रहे हो या मर रहे हो?' बाबूजी कहते हैं। हालाँकि बाबूजी सिगरेट की जगह गाँजा पीते हैं। यदि गाँजा न पीयें, तो चिन्ता और तनाव के मारे दिमाग की नशें कट जाएँ। और दोस्त ! वे सिगरेट न पीयें, तो उनके बेलबाट्म पैण्ट का मज़ा ही क्या। सभी अपनी-अपनी जगह पर फिट हैं, अकेले वह 'अनफिट' हैं। अपनी ज़िन्दगी, परिवार, समाज में, सभी जगह अनफिट···।

इसी उधेड़-बुन में वह घर पहुँचता है। बाहर से ही बात समझ में आ जाती है। आज सुबह से ही शनीचरा का प्रकोप है। कलह अपनी चरम सीमा पर है। आँगन में बाबूजी हैं। वे अनाप-सनाप बक रहे होते हैं। क्षण-भर के लिए वह सोचता है, गाँजा चल गया होगा। लेकिन, भ्रम टूटता है। बाबूजी तो केवल रात में ही पीते हैं। ज़रूर कोई बात है—उसकी माँ गाँव से आ गयी है। शायद तबीयत और अधिक बिगड़ गयी होगी। छोटा भाई देवेश बाहर आता है। उससे पूछता है—'क्या बात है?' वह जवाब दिए बिना, उसका हाथ झटककर चल देता है। वह समझ जाता है। भाई भी शनीचरा के प्रकोप में है। वह कमरे में घुसता है। पत्नी किवाड़ के ओट में खड़ी मिलती है। वह कुछ सुन रही होती है। उससे पूछता है—'क्या बात है?' जवाब में वह सिसकने लगती है। उसकी आँखों में कोई बहुत बड़ा डर समाया नज़र आता है। वह मुँह से तो कुछ नहीं कहती, लेकिन उसका चेहरा बहुत कुछ कह जाता है। बाबूजी की बातें अब भी स्पष्ट सुनाई पड़ रही होती हैं। इस कुलछनी के कारण दो-दो लड़के हाथ से निकल गए···बड़का तो नेतागिरी और लिफाफाबाजी में रहता है। उसे अपने मेहरिया से कोई मतलब ही नहीं है। छोटका दिन-रात भौजाई को घेरे रहता है और वह बैठायी रहती है।···एक से मन नहीं भरता तो···।' मुझ पर वज्रपात होता है। सहन नहीं होता। कमरे से बाहर निकलकर आँगन में आ जाता हूँ। माँ खाट पर पड़े-पड़े कराहती होती है। बाबूजी की भौंहें चढ़ी होती हैं और आँखें सुर्ख लाल होती हैं, बावजूद आज उसे बाबूजी से डर नहीं लगता। वह झुँझलाकर कहता है—'इसको अभी तुन्रत मैके भेज दीजिए··जब तक रहेगी साली, सिरदर्द बनी रहेगी। ढ़ोल को मैके भेजने के नाम पर बाबूजी की प्रतिक्रिया अचनाक मर-सी जाती

है। वे एकदम चुप हो जाते हैं। तभी माँ कराहते हुए कहती है—'हाँ वड़कू! जल्दी पहुँचा दो वहू को मैके!···मैं मर जाऊँगी तो फिर ले आना।'

उसका माथा कटता जा रहा है। उसे समझ में नहीं आता कि क्या करे! कहाँ जाए!

तभी अरहंत वावू का नौकर वावूजी को बुलाने के लिए आ जाता है। कहता है—'पण्डी जी, मालिक बुला रहे हैं, वकील के पास जाना है न। बिगड़ रहे थे कि अभी तक आए नहीं।' वावूजी चुपचाप उठकर चल देते हैं। लगता है वावूजी क्या गए खौफ चली गयी। थोड़ी शान्ति मिलती है। लेकिन, माँ सिसकती होती है। वह माँ के आँसू पोंछता है। कुछ देर तक माँ के सिरहाने बैठा रहता है। उसका मन वेचैन और अधीर होने लगता है। उसकी इच्छा होती है कि खूब रोए। लेकिन रोने से तो किसी समस्या का समाधान होता नहीं। चलो, कहीं भाग चलो?···लेकिन ढोल का क्या होगा?

कमरे में जाकर वह निढाल खाट पर लोट जाता है। पत्नी अब भी सिसकारियाँ ले रही होती है। तनाव अभी भी कम नहीं होता। लेकिन पता नहीं कब, वेचैनी उसे मुक्त कर देती है और वह गाढ़ी नींद में खो जाता है।

एक गुलथुल आदमी है, उसका सिर चंडूल है। उसका सिर गाँधी टोपी से ढ़का हुआ है। टोपी के नीचे चंडूल सिर में एक कारखाना है। कारखाने में कई मशीनें हैं···एक मशीन, कतार में खड़े कई लोगों के शरीर से पतला खून लेकर गाढ़ा खून तैयार करती है और उसकी आपूर्ति गुलथुल आदमी की धमनियों में करती है, ताकि वह गुलथुल आदमी हमेशा तरो-ताज़ा रह सके।···दूसरी मशीन नकली दवाओं का समीकरण तैयार कर रही होती है, जो मरने की कामना रखने वालों के लिए बहुत ही फायदेमन्द उपलब्धि है। तीसरी मशीन सूद के पैसे का खाता तैयार कर रही होती है···चौथी मशीन इनकम टैक्स की देय राशि कम करने के इरादे से कैलकुलेसन्स बना रही होती है···पाँचवी मशीन आधुनिक वैज्ञानिक हथियारों के निर्माण में लगी है, ताकि वह गुलथुल आदमी आक्रमण के

समय में अपनी सुरक्षा कर सके···छठी मशीन गाँधी टोपी पर उजले रंग की सफेदी चढ़ाती होती है, ताकि टोपी हमेशा चमचमाती रहे और कोई यह सोच भी नहीं सके कि गाँधी जी की टोपी एक ही साथ इतनी सारी चीज़ों को पचा सकती है···एक और मशीन होती है। यह मशीन लकड़ी के बुरादे से रोटी बना रही होती है। इस मशीन के पास लोगों की एक लम्बी कतार प्रतीक्षारत होती है। रोटी के टुकड़ों पर लोग एक ही साथ टूट पड़ते हैं। वे एक-दूसरे का मुँह नोच रहे होते हैं। रोटी का एक टुकड़ा प्राप्त करने में उसके बाबूजी का चेहरा भी लहूलुहान हो गया है···लेकिन बाबूजी को अपने लहूलुहान चेहरे को लेकर कोई परेशानी नहीं। वे रोटी का एक छोटा-सा टुकड़ा पा लिए हैं और पूजा के श्लोक गा रहे हैं। अपने प्रभु-परमेश्वर से उस रोटी वाले गुलथुल आदमी और उसके कारखाने की सुरक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं। वह दिमाग पर जोर देकर गुलथुल आदमी के चेहरे को पहचानने की कोशिश करता है। उसे याद आता है···अरहंत बाबू हैं···मालिक हैं···सरकार हैं।

वह बाबूजी से कहता है—'आपका चेहरा लहूलुहान हो गया है बाबूजी !' 'मेरे चेहरे पर खून नहीं, लाल रंग लगा है, तुम्हारी आँखों पर ही नये ज़माने का रंग चढ़ गया है···' बाबूजी कहते हैं।

'आप जो रोटी खा रहे हैं, वह लकड़ी के बुरादे का बना हुआ है···।' वह कहता है। 'बहुत मीठी और स्वाद वाली रोटी है···' बाबूजी फिर श्लोक पढ़ने लगते हैं।

उसका दिवास्वप्न भंग हो जाता है तो पाता है कि ढोल उसे ही पीट रही होती है। पीटती क्या है, झकझोर रही होती है। दिन के तीसरे पहर के सोये-सोये रात होने लगी है। पत्नी उसके लिए खाना लाई होती है। वह खाने के प्रति अनिच्छा व्यक्त करता है। वह मनाने लगती है।··· 'माफ कर दीजिए···खा लीजिए, मेरी कमस' पत्नी कहती है। वह स्वप्न के बारे में सोचने लगता है। फिर खाने पर बैठ जाता है। पत्नी ताड़ का पंखा झलने लगती है। पत्नी चुप रहती है। वह भी चुप होता है। कमरे में खामोशी तैरती रहती है !

—'बाबूजी की बातों पर आपने यकीन कर लिए क्या?' वह पूछती है।

'उहूँ।'

'तो फिर उदास क्यों हैं ?'

'मैं कोई नपुंसक थोड़े न हूँ, जो मेरी बीवी मुझे छोड़कर मेरे छोटे भाई और दोस्तों के पास जाएगी।'

'आपको विश्वास है न मुझ पर ?' पत्नी सजल आँखों को लिए पूछती है।

'हाँ, हाँ, है विश्वास। क्या दस्तावेज पर इस बात को लिखा लेना चाहती हो ?' वह खिझता है। पत्नी सहमकर चुप हो जाती है। फिर वह खामोशी काटने लगती है।

वह हाथ के केहुने से आँखें ढककर सोने का ढोंग रचता है। लेकिन, कनखी से सब कुछ देखता होता है। पत्नी थर्र-थर्र काँपती होती है। वह बार-बार अपने हाथ आगे बढ़ाती है। लेकिन पत्नी के हाथ आगे नहीं बढ़ पाते। पत्नी का एक हाथ उसके धड़कते कलेजे पर होता है। दूसरे हाथ से वह आँचल पकड़कर अपने आँसू पोंछती होती है। पत्नी में इतनी हिम्मत तो नहीं होती कि वह उसके शरीर को भी छू सके। पत्नी के होंठ फड़कते हैं—'सुनिये।'

'सो गए ? आएँ ?' पत्नी की आँखें फिर भर जाती हैं।

वह कोई जवाब नहीं देता। पत्नी उसके पैरों को धीरे-धीरे दबाने लगती है। वह करवट बदलता है। आँखों को मिचते हुए वह जगने की मुद्रा बनाता है।

—'बाबूजी की बातों पर आपको यकीन हो गया है, क्या ?' वह उसी सवाल को फिर पूछती है।

—'मेरे विश्वास करने और न करने से क्या अन्तर पड़ता है ?'

'मुझे मैंके भेज दीजिए।' वह उदास स्वर में कहती है।

'अभी जा सकती हो, इसी वक्त।' वह झल्लाकर कहता है। पत्नी फफककर रोने लगती है। वह गुस्से में बकता है। 'कई बार कहा कि परिवार के लोग जैसा कहें, वैसा ही करो।···लेकिन मेरी बात की चिन्ता किसे है ?'

'बबुआ जी तो मेरे देवर हैं। और भाभी तो माँ की तरह होती है···'

पत्नी सफाई देती है।

'परिवार व्यवहार पर चलता है, आदर्श पर नहीं···।' वह कहता है।

'माफ नहीं कर दीजिएगा ?' पत्नी गिड़गिड़ाती है।

'तुम ही मुझे माफ कर दोबा बा ! बहुत तंग आ गया हूँ···।' पत्नी सन्न, वह चुप।

o

रात के तीसरे पहर उसकी नींद अचानक खुल जाती है। पैरों में सिरहन महसूस हो रही होती है। देखता है, पत्नी उस पर हाथ-पाँव फेंक-कर सो रही है। ध्यान देता है। पत्नी सोई नहीं है। यदि सोई रहती तो उसका कलेजा इतना जोरों से धड़कता नहीं होता। पत्नी का चेहरा अत्यन्त सहमा हुआ और आतंकित लगता है। पत्नी की आँखों की पलकें काँपती होती हैं। उसके होंठ फड़फड़ा रहे होते हैं। दूसरे ही क्षण पत्नी की आँखों से आँसू के दो बूँद छलककर उसके कोमल गालों पर लुढ़क जाते हैं।

'ए ऽऽऽ।'

'हूँ।'

'रो क्यों रही हो ?'

'रो नहीं रही हूँ।'

'मैं तेरे साथ हूँ, रोना इसीलिए आता है क्या ?'

'मेरी नीयत पर आपको शक है।' पत्नी कहती है।

'मुझे अब अपने आप पर शक होने लगा है···' वह कहता है।

'मुझे तो आपमें कोई दोष नजर नहीं आता···।'

'मुझे भी तुममें कोई दोष नजर नहीं आता···।' वह अनायास ही कह देता है। एक अप्रत्याशित बात उसके मुँह से निकल जाती है। वह सोचता है, क्या कह दिया। फिर सोचता है कि बनावटी गुस्सा अब साथ नहीं देता और दिल की बात स्वतः फूट पड़ती है। पत्नी मुस्कराती है। वह अपने कोमल गालों को उसके सीने पर रख देती है। ऐसा लगता है कि कई दिनों बाद उसकी आत्मा को थोड़ी शान्ति मिली हो। लेकिन फिर भी कुनमुनाता है। 'हटो ना।'

'आज नहीं हटूँगी।'

'तो फिर क्या करोगी ?'

'वही करूँगी, जिसके लिए ब्याह कर लाए हैं आप।'

'हट' पैरों पर रेंगती पत्नी की अँगुलियों को वह झटक देता है। पत्नी उसे छोड़ने के बजाय और जकड़ लेती है। उसकी भी इच्छा होती है कि पत्नी को अपनी बाँहों के आगोश में समेट ले। लेकिन बनावटी गुस्सा उसे रोक देता है। लेकिन कुछ क्षण भी स्वयं रोक पाना उसे कठिन लगता है। अब-तब की स्थिति हो जाती है।

—'यह क्या कर रही हो।' उसके अंग-प्रत्यंग उत्तेजित होने लगते हैं।

'कुछ भी तो नहीं' पत्नी ऐसे कहती है जैसे बिल्कुल अनभिज्ञ हो।

—'धत्, बुरी बात।' वह फिर कुनमुनाता है।

'अच्छी बात···' वह हँसने लगती है।

'वो है क्या' वह पूछता है।

'ना' 'वो तो खत्म हो गया। लेकिन ऐसे ही मजा आता है।'

'ना-ना, हट। पेट रह जाएगा।' वह गम्भीर होकर कहता है।

'वो मैं देख लूँगी, राजाजी।' पत्नी उसकी गर्दन में बाँह डालकर कहती है।

'जब तक कोई नौकरी नहीं हो जाती, कहाँ से खिलाऊँगा ?' वह पूछता है।

'आप मत खिलाइएगा।'

'तो तुम कहाँ से लाओगी ?'

'मैं चला लूँगी न।'

'तो अभी क्यों नहीं चला लेती ? साबुन के पैसे के लिए खामख्वाह डाँट सुनवाई।'

'जब तक मुँह दिखाई के पैसे थे, तब तक तो चलाई ही। माँ को भी दी, कुछ आप भी लिए। यदि पैसे होते तो कत्तई नहीं माँगती, आपसे।'

'छोड़ो भी।' वह टालता है।

'ना, आज नहीं हटूँगी।' पत्नी अड़ जाती है।

'देखती नहीं कितना कमजोर हो गया हूँ ?'

'वो तो है।'

'सूखी रोटी खाकर इतना बल कहाँ से आएगा कि रोज-रोज…।'

'समय पर खाते भी तो नहीं। नेतागिरी का चक्कर ही ऐसा है…।'

'अच्छा, अब सिर न खायो।'

'अऽऽ लऽऽ ला…लर…लर…लाऽऽ…लोऽऽ' पत्नी जीभ बिराती है। वह उसके होंठों को अपनी होंठों के तले दबा लेता है।

'अब बोलो, दवा दूँ कि…।'

'लर ऽऽ लो ऽऽ लो ऽऽ'

'बहुत तंग करती हो?'

'करूँगी तंग, खूब करूँगी · गले का ढोल जो हूँ…ठन-ठन, ठाँय-ठाँय …वह खिलखिलाकर हँसने लगती है। वह भी हँस देता है। तभी बगल के कमरे से उसके बाबूजी के खाँसने की आवाज़ आती है। दोनों चुप हो जाते हैं। यदि बाबूजी ने सुन लिया तो कल कहेंगे कि लाज-शरम सब बेच दिया…।'

o

'कोई आया है' पत्नी उसे जगाती है।

'कौन?'

'कालू'

कालू का नाम सुनकर वह सिहर जाता है। लुँगी लपेटते हुए बाहर निकलता है। कालू को देखकर उसकी प्रत्युत्पन्न-मतित्व शक्ति ही हवा हो जाती है। उसके जेहन में एक ही प्रश्न हलचल मचाने लगता है…जवाब …जवाब…जवाब…।

एक जवाब यह हो सकता है कि कई बड़ी पत्रिकाओं और रेडियो में रचनाएँ पड़ी हैं। वे निश्चय ही पसन्द आएँगी और पारिश्रमिक मिलते ही कालू के सिगरेट के पैसे वह चुका देगा।

एक जवाब यह हो सकता है कि कोई बहुत बड़ी रकम तो नहीं। कालू की तरह दूसरों के पैसे भी बाकी हैं। मसलन, सरदार के कन्ट्रोल के कपड़े का, दर्जी का, छेना वाले का…। कोई तो अभी तक नहीं माँगा। फिर कालू के लिए ही क्या वह भागा जा रहा है?

एक जवाब यह भी हो सकता है कि जल्दी ही कहीं कोई नौकरी-चाकरी लग जाएगी या कहीं ट्यूश्न कर लेगा और पहले माह के वेतन से ही उसके कर्ज चुका देगा।

एक जवाब यह भी हो सकता है कि महज पच्चीस-पच्चास के लिए प्राण छूटे जा रहे हैं? कालू के कई सैकड़ों-हजारों के काम करा दिए तो उसका कोई महत्त्व नहीं? या कालू केवल चाय-पान से उसकी कीमत आँकता है?

और एक अन्तिम जवाव यह भी हो सकता है कि वह इन दिनों लगातार त्रासद परेशानियों से तबाह रहा। छत से गिरकर भगिनी मर गयी, भाई का किडनी जर्क कर गया, माँ की बीमारी बढ़ गयी, बाबूजी का दम्मा उपट गया और उसे कमज़ोरी के कारण मिर्गी के दौरे पड़ते रहे।

लेकिन, सारे जवाब एक-दूसरे से मिलकर गड्डमड्ड हो जाते हैं। वह कालू के सामने जाकर निरीह बनकर खड़ा हो जाता है। वह आँखों को मलता है, चेहरा छुपाने के बहाने, शायद। कालू हँसता है।

'क्यों, भाभी ने रात-भर जगा दिया क्या?' कालू मज़ाक करता है।

'कोई ऐसी बात नहीं है यार!' मुँह से शब्द निकालने के लिए उसे अतिरिक्त प्रयास करने पड़ते हैं।

'कैसा चल रहा है?' कालू पूछता है। लेकिन भ्रम में उसे सुनाई कुछ दूसरा ही पड़ता है।

'पैसा चल रहा है···कहाँ पैसा चल रहा है?' वह बड़बड़ाता है जैसे नींद में हो।

'नहीं रे साल्ला। पूछ रहा हूँ कि कैसा चल रहा है? कालू जोर से कहता है।

'ओ हऽऽ।' उसे थोड़ा इत्मीनान होता है। उसके गले का थूक और अधिक गाढ़ा हो जाता है।

'बस समझ लो किसी तरह जी रहा हूँ।'

'चांदी कट रही है, तुम्हारी तो?' कालू चुटकी लेता है।

'नहीं यार, एक तो गरीब हुआ, दूसरे में सोचने-समझने की दिक्कत भी

आ गई। यदि अनपढ़-बुद्धू रहता, तो शायद मानसिक तनाव इतना तो नहीं होता।'

'सुबह-सुबह कर्म का रोना क्यों रोने लगे?' कालू कहता है—'मनहूस कहीं के।'

'यों ही कह रहा था···' वह लाज छिपाता है।

'दोपहर में घर आ जाओ, आज भतीजे की छठी है, पूजा भी। खाना वहीं रहेगा।'

'ज़रूर आ जाऊँगा···ज़रूर···।'

उसे विदा करके लौटा तो बाबूजी के शब्द उसके कानों में पड़े—'दामाद आए हैं···तुम्हारे बबुआ बाहर हैं।' बाबूजी उसकी माँ से कह रहे थे।

कालू के भतीजे की छठी उसे छठी का दूध याद दिलाने लगी। वह सोचता है, 'उसकी छठी में कोई उपहार तो ले जाना पड़ेगा ही।'

'वह तो बेहद ज़रूरी है।'

'कितने का खर्च है?'

'कम-से-कम दस-पन्द्रह रुपये का।'

'फिर नहीं जाऊँगा, कह दूँगा, तबीयत ठीक नहीं थी।'

'लेकिन अपनी शादी में तो वह आया था, काफी तोहफा लेकर।'

'मैं माँगने तो नहीं गया था···।'

'लेकिन यह समाज की औपचारिकता है,···इससे अलग नहीं कटा जा सकता।'

'मुझे यथार्थ में विश्वास है, औपचारिकता में नहीं।'

'कभी-कभी औपचारिकताएँ भी यथार्थ बन जाती हैं···।'

'तो क्या सोचा?'

'देखा जाएगा।'

अभी अन्तर्द्वन्द्व से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाता कि तब तक डाकिया आ जाता है वह दरवाज़े की ओर लपकता है। कलेजा धड़धड़ कर रहा होता है। आँखें फाड़-फाड़कर देखता है। बड़ी पत्रिकाओं के मुहरों के लिफाफे, जी धक् से करता है। रचनाएँ लौट आईं। अब कालू के बकाया का क्या होगा? उसका चेहरा रुआँसा हो जाता है। मन एकैक काफी बोझिल

हो जाता है। वह भूल जाता है कि कोई हाथ में उसकी किताब भी है। कवर खोलता है···'उत्तरार्द्ध' छोटी पत्रिका होती है। याद आता है। इसमें तो उसकी रचना होगी···पहली रचना। दुखवा में बीतल रतिया···। वह पन्ने उलटता है। चलो, छोटी पत्रिका ही सही। जहाँ से पारिश्रमिक मिलना था, वहाँ से तो रचनाएँ लौट आईं। छोटी पत्रिकाएँ तो पारिश्रमिक देती नहीं। फिर कर्जों का क्या होगा ? इतना कुछ सोचने के बावजूद उसे खुशी होती है। पहली रचना जो छपी है। छलाँग लगाकर वह पत्नी के पास जाता है। उसे दिखाता है कि उसकी कहानी एक प्रतिष्ठित पत्रिका में आई है। खुशी से पागल होकर वह पत्नी के गालों पर एक पप्पी जड़ देता है। फिर सोचता है, क्यों नहीं बाबूजी को दिखाए। हमेशा कहते रहते हैं कि झूठमूठ का लिखता रहता है, कहीं छपता-वपता नहीं। तमाम पूर्व घटनाओं को घटाकर वह बाबूजी के पास पहुँच जाता है···'यह देखिए, मेरी कहानी छपी है।' बाबूजी एक हल्की-सी नज़र पत्रिका पर डालते। हैं फिर तपाक से पूछते हैं—कितने पैसे मिलेंगे इससे ?'

'दरअसल यह छोटी पत्रिका है।' वह घबराकर कहता है।

'तब तो कम ही पैसे देंगे।'

'जी नहीं, यह श्रमजीवी पत्रिका है, ये लोग पैसे नहीं दे सकते।'

'झूठ बोलते हो ? इतनी मोटी पत्रिका और पैसे क्यों नहीं देंगे ?'

'ये लोग चन्दा करके पत्रिका निकालते हैं, अपनी लड़ाई लड़ने के लिए।'

'तो क्या तुम ज़िम्मेवार हो इसके ? यदि पैसे न मिले तो लिखने से क्या लाभ ?'

'महज़ पैसे के लिए थोड़े न लिखा जाता है···।' वह कहता है।

'अच्छा बाबू, तू झूठ न बोल, मैं नहीं माँगता तुम्हारे लेखन के पैसे।'

'मैं सच कह रहा हूँ बाबूजी।' वह एकदम मायूस हो जाता है। उसकी सारी उमंग पैसे की कब्र में दफन हो जाती है।

'ससुरू अपना रास्ता चेतो, नौकरी-चाकरी करो वरना भूखो मरोगे।'

'कहाँ रखी है मुफ्त की नौकरी ?'

'छोटी ही सही। ट्यूशन से भी पचास-सौ कमा सकते थे, वरना एम० ए० पढ़ने का कोई काम नहीं।'

'ट्यूशन भी कहाँ मिलता है ?' वह अन्यमनस्कता प्रकट करता है।

'मालिक से तो तुम्हें मतलब ही नहीं। कभी आते-जाते भी नहीं। अपने को लाट साहब बनते हो। वे हमारे अन्नदाता हैं, वरन् शहर में खड़े होने की जगह नहीं मिलती। आते-जाते, उठते-बैठते, तो उनकी कृपा दृष्टि रहती। अपने ही किसी काम में रख देते···और क्या ?' उसके बाबूजी लम्बा भाषण देने लगे थे।

'मैं अरहंत बाबू के यहाँ मास्टरी नहीं कर सकता। दूसरे लोग भले ही कुछ कम दें, वह मुझे मंजूर है। कराएँगे मास्टरी और रोज कहेंगे कि सब्जी ले आओ, बिजली और फोन का बिल जमा कर आओ। मुझे उनकी गुलामी मंजूर नहीं। वह साफ-साफ कह देता है।

'लाट बने रहो ससुरू। जैसा जी में आए, वैसा ही करो। गाँव में दस कट्टा ज़मीन है अभी, मेरा बुढ़ापा इसी के सहारे कट जाएगा।' बाबूजी उबल पड़ते हैं।

०

कालू के घर सभी लोग पहले से ही इकट्ठे रहते हैं। मुकेश, कौशल, गुरु, अनुज, शिव, शेखर, सुरेन्द्र और कई लोग। सबकी हाथों में लाल-पीले कागज़ों में लिपटे डब्बे के उपहार होते हैं। यह सब देखकर अचानक उसमें हीन भावना प्रवेश कर जाती है। उसके हाथ में तो कुछ भी नहीं। लाज छुपाने के लिए उसने अपनी हाथ में अपने कहानी वाली पत्रिका ले ली है। अपनी प्रकाशित कहानी की खुशखबरी सुनाकर वह अपने उपेक्षित एवं हीन भावना को भुलाना चाहता है। मुकेश को पत्रिका देता है···'देख इसमें मेरी कहानी छपी है।' आस-पास बैठे सारे मित्र उसकी बात को सुनते होते हैं, लेकिन वे उसकी बात में कोई अभिरुचि नही दिखाते। मुकेश भी उदासीन दीखता है। केवल शीर्षक देखकर, यह कहते हुए पत्रिका लौटा देता है कि अच्छी है। उसे बहुत निराशा होती है। सारे लोग फिल्मों, सस्ते उपन्यासों और कालेज की लड़कियों की चर्चा में मशगूल हैं। इतनी हलचल के बावजूद वह अन्दरूनी खामोशी के असह्य भार-तले दबा जाता है।

मुकू से पचास और शिव से तीस रुपये एक बार लिए थे। वही भगिनी गिर गयी थी तो पटना अस्पताल ले जाने के लिए। वह सोचता है कि शायद

कर्ज के कारण ही सभी उसकी उपेक्षा कर रहे होते हैं। उसे ऐसा लगता है जैसे सारे लोग उसे घूर रहे होते हैं और कह रहे होते हैं···मेरे पैसे···मेरे पैसे···कंजड़ है साला···जाली नम्बर वन···खाली हाथ भोजन दबाने आया है···। उनकी हल्की मुस्कान उसे पैशाचिक ठहाके की तरह महसूस होती है।

रंगीन वातावरण उसके लिए दमघोंटू बन जाता है। अभी पूजा सम्पन्न हो रहा होता है। कालू आतिथ्य-सत्कार में व्यस्त दीखता है। वह उसकी बगल से गुजरता है। वह कालू को टोकता है—'सुनो, मैं थोड़ी देर में आ रहा हूँ।' 'ठीक है।' कालू कहता है। कालू का यही 'ठीक है' कहना उसे डंस लेता है। उसे पूरी तरह निराश कर देता है। वह सोचता है कि कालू को भी उसका खाली हाथ यहाँ आना पसन्द नहीं। एक ओर भरे हुए हाथ··· दूसरी ओर खाली हाथ···सामंजस्य सम्भव नहीं। वह एक झटके से सीढ़ियाँ उतरकर सड़क पर चला आता है।

वह सड़क पर बढ़ता जाता है। वह सोच नहीं पाता है कि कहाँ जाए—बावजूद बढ़ता जाता है···दिशाहीन···लक्ष्यहीन···

काफी आगे चौक से भी आगे निकल जाता है। अगले नुक्कड़ पर उसके पैर एकैक थम जाते हैं। दाईं ओर वह मुड़ता है। संगमरमरी सीढ़ियों पर उसके पैर किसी स्वचालित यंत्र की तरह चलने लगते हैं। ऊपर, रंगीन फर्श वाले एक हॉल में गाँधी टोपी पहने, चंडूल गुलथुल आदमी बैठा हुआ है। वह उसके सामने जाकर खड़ा हो जाता है। अपनी इन्द्रियों पर उसका कोई नियन्त्रण नहीं रह गया है। उसके हाथ, उसकी अनिच्छा के बावजूद उठकर उस गाँधी टोपी वाले आदमी को सलाम ठोक देते हैं। तभी उसके बाबूजी हाथ में सब्जी का झोला लटकाये वहाँ पहुँच जाते हैं। उसकी अवाज़ सुनकर भी गुलथुल आदमी गर्दन सीधी नहीं करता। लगता है, जैसे टोपी से ढ़की किसी मशीन से ही उन्हें वह देख रहा हो।

'क्या है ?'

'जी कुछ नहीं।' उसका गला सूखता जाता है।

'क्या चाहिए ?'

'जी कुछ नहीं।' उसके तलवों में सुर्सुराहट होने लगती है।

'तो क्यों आए हो ?' गुलथुल आदमी गुर्राता है।
'जी कोई काम चाहिए।'
'कौन-सा काम करोगे ?'
'कोई भी काम···।' उसका सिर नीचे झुकता चला जाता है।
'गुड्डी को पढ़ावोगे ?'
'जी, पढ़ा सकता हूँ।'
'कितना लोगे ?'
'जो आपकी मर्जी !' वह कहता है।
'बीस दे दूंगा।'
'जी बहुत मँहगी है।'
'मँहगी तो मेरे लिए भी है।'
'वो तो है।'
'बोलते क्यों नहीं।' गुलथुल आदमी की आवाज़ काफी तेज़ हो जाती है।
'चालीस होता तो पढ़ाने में मेरा भी मन लगता···।' वह कहता है।
'पहले माह में पच्चीस दूंगा···फिर काम देखकर बढ़ाऊँगा।'
'मंजूर है ?'
'जी···।' कहते हुए उसकी जुबान काँपती है।

उसके बाबूजी सब कुछ सुनकर हल्की-सी मुस्कान छोड़ते हैं। शायद इसलिए कि उनकी तरह उनका बेटा भी बुरादे की रोटी के लिए उनकी कतार में खड़ा हो गया है और रोटी के लिए महज श्लोक पढ़ने की उनकी नियति के साथ उसके बेटे की नियति भी जुड़ गयी है।

रात गए वह घर लौटता है। बाबूजी ने घर में खुशखबरी फैला दी है। पत्नी बहुत खुश नज़र आती है। पत्नी उससे लिपटकर प्यार और स्नेह खोजती है। तभी उसकी इच्छा होती है कि इस ढोल को इतना पीटे, इतना पीटे कि स्नेह, प्यार, मोह और आत्मीयता की तमाम चादरें फट जाएँ और फिर ढोल कभी नहीं बजे और वह हमेशा के लिए एकांतता, निश्चिन्तता और शान्ति के वातावरण में जीने लगे। लेकिन यह उसका कौरा भ्रम है, वह जानता है; अत्र भागने से कुछ नहीं हो सकता···यह बात उसके समझ में आने लगी है।

० ०

शुभ लाभ

रोज़ की तरह, जंगल से वे सीधे हाट चले आए। लट्ठों के ढेर की आड़ में उनका अड्डा जमता था। वे वहाँ गए। जागा ने अपने कन्धे के अँगोछे को ज़मीन पर बिछा दी। नगीना अपनी जेब से ताश की गड्डी निकाल लिया। हरगुन ने बीड़ी सुलगा ली। अभी हरिया नहीं पहुँचा था, फिर भी, वे बैठ गए। पत्ते बंटने लगे। अभी दो-तीन दाव ही खेल हुआ था कि हरिया दौड़ते हुए आ पहुँचा, जैसे गाड़ी पकड़ने के लिए दौड़ा आ रहा हो।

—का हो जगत्तर, काहे लेट कर दिए आने में? हरिया के आने पर पत्ते पिसते हुए जागा ने पूछा।

—तुम असली चुतियानन्दन हो जागा, कहा था कि साथ चलेंगे, भाग आया पहले।

—तू कहाँ रह गया था? जागा ने फिर सवाल किया।

—मुंशी के पास चला गया था। गद्दी पर वह आध घण्टे देर पहुँचा। आठ रुपये पैंचा लेना था।

—मिल गया कर्जा?

—मिला तो, लेकिन परसों तक देना भी है। साथ में दो रूपेय्या, सूद भी।

—तब तो आज जेब काफी गर्म है तुम्हारा। बैठकर पूरा माल लगाओ, माल पाओ···।

—ना ना जागा भाई। बेटे की दवा के लिए कर्ज लिया हूँ। इससे नहीं खेलूंगा।

—कितना कमाये आज। हरिया ने जागा से पूछा।

—दो टाली बाँस काटा था, तो साढ़े चार दिए। तुम कितता काटे?

—तीन टाली काटा था, लेकिन सूद में मुंशी ने रख लिया।

अपने ऐने की कमानी को नाक पर चढ़ाते हुए नगीना ने पत्ते उठाया। वह बीस पैसे का चाल, दाव पर रख दिया।

—तुम्हारा चाल है हरगुन। जागा ने उसे याद दिलाया।

—पन्द्रह पैसे का ब्लाइंड···वह पैसे दाव पर फेंक दिया।

—मेरा भी ब्लाइंड··हरिया ने भी पैसे फेंक दिए।

जागा पत्तों को समेटकर उठा अंगुलियों से पत्तों को छुपाते हुए खिसकाने लगा···दुग्गी···अट्ठी···बादशा धत् साला···पैक उसने पत्तों को गड्डी की ओर फेंक दिए। नगीना फिर तीस पैसे की चाल चल दिया।

···चौग्गा···नहला···दुग्गी हरगुन भी पैक।

हरिया ने सोचा, ज़रूर नगीना को अच्छे पत्ते आ गए हैं। वह डर गया और पत्ते उठाने लगा। लेकिन तभी उसे मुंशी की गद्दी पर की 'लछमी जी' की याद हो आई। अपने पलकें गिराकर, लछमीजी की प्रतिमा के दर्शन की उसने कामना की। आँखों में तस्वीर उतर आई। सजे-सजाए तख्ते पर लछमी-गणेश की मूर्ति और तख्ती के अगल-बगल बड़े अक्षरों में लाल रंग से दीवार पर लिखा—'शुभ-लाभ'। वह वर माँगने लगा···हे देवी, आज किरिपा करो···मेरी जेब भरो···। पत्तों को वह धीरे से उठाया।···एक्का वह खुश हुआ·· दहला···काम चलाऊ है लछमी महारानी,···मेम···हे देवी, यह दाव मुझे जिता दो···मन ही मन वह बुदबुदाया। उसका कलेजा धड़क रहा था और हाथ काँप रहे थे। तीस पैसे का चाल वह दाव पर रख दिया। वह फिर मिन्नत करने लगा···हे देवी! आज न हराना मुझे···बेटे की दवा के लिए पैसे लाया, कर्ज लिया।···मेरे बेटे को बचा लो, लछमीजी···।

···इस बार अठन्नी का चाल···नगीना ताव से पैसे पटक दिया। हरिया को धक् से लगा···चौथा चाल दिया···मानो कि 'फ्लस' या 'रन' आ गया। कौन गला फँसाये। उसने कहा—आठ आने पर शो कर दो, नगीना।

नगीना बीच में पत्ते फेंका···दुग्गी पेयर···। हरिया का मन रुआँसा हो गया। नगीना पैसे बटोर लिया और पत्ते फेंटने लगा। हरिया पुनः

लछमीजी का स्मरण करने लगा। लेकिन वह सोचा, मुंशी जी की लछमी तो नाराज लगती है। वह अपने ध्यान को भट्ठी की लछमीजी पर टिकाया। लछमीजी ने तो दर्शन नहीं दिए। लेकिन, 'शुभ-लाभ' उसके सामने आ गया। वह सोचा, अब ज़रूर लाभ होगा, यह दाव शुभ होगा।

नगीना पत्ते बाँटने लगा।

—बोर्ड रखो भाई···।

—ये लो रख दिया··।

—दस···बीस···चालिस,·· दस पैसे और चाहिए।

हमने रख दिया।

—किसने नहीं रखा···?

सभी ने कहा···मैंने रख दिया,···मैंने भी रख दिया···।

—तो किसने नहीं रखा···?

—जो नहीं रखा, उसको कोढ़ फूटेगा···बेटा मरेगा उसका।

हरिया का कलेजा धड़क गया, बेटा बीमार है कहीं···। इसलिए, उसने पैसे रख दिए।

—मेरा ब्लाइंड, पन्द्रह का···।

—मेरा भी ब्लाइंड··।

हरिया ने ब्लाइंड फेंक दिए।

जागा पत्ते उठाया···बादशा, मेम···दहला···ओह ! रनिंग कट गया ···पैक।

नगीना का चाल···तीस पैसे।

हरगुन पत्ते उठाया···दुग्गी···पंजा ··तीग्गी···धत् साला, बद किस्मत् है। खेल के नियम के अनुसार उसने बोर्ड के पैसे निकाल लिए।

हरिया कार्ड उठा लिया···लाल पान दहला···सत्ता लाल पान···लग गया फ्लस ! वह तीस पैसे का चाल दिया। हरिया इस बार पचास पैसे का चाल लगा दिया। नगीना भी मानने वाला नहीं था। वह भी चाल दिया। हरिया ने भी लछमीजी की दुआई लगाई···हे माई, अब की किरिपा दिखाओ, शुभ-लाभ के साथ लछमी-गणेश का तख्ता उसे फिर याद हो आया। बहुत हिम्मत करके वह फिर चाल लगा दिया। लेकिन, नगीना पर

उसके चाल का कोई प्रभाव नहीं हुआ। वह और ताव में आया और एक रुपया दाव पर लगा दिया। अब हरिया बहुत घबड़ा गया···ज़रूर अच्छा पत्ता आया है। शुभ-लाभ को स्मरण करते हुए वह पैसे दिया और शो माँग लिया। उसका शरीर सन्न रह गया। फल्स उधर भी था। नगीना के पत्ते बड़े थे। हरिया हार गया।

हरिया चार रुपये से ऊपर हार गया था। अब उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी कि और खेले। लेकिन वह सोचा, जितना हार गया उतना पूरा करके उठ जाऊँगा, वह बैठा रह गया। जागा ढाई रुपये हारा था। वह भी हारे हुए पैसे वापस लेने के लोभ में बैठा रहा।

नगीना पत्ते फेटकर बाँटने लगा। सभी बोर्ड ब्लाइंड रखने में व्यस्त थे। तभी हरिया की नज़र लाठी घसीटते आते सतरोधन पहलवान पर पड़ी। वे सभी सचेत हो गए। आते ही सतरोधन पहलवान अपनी मूँछ पर हाथ फेरते हुए कहा—निकालो पैसे···आज और कल का नाल···दो···दो रुपये। सभी सकपका गए।

जागा ने कहा—कल अड्डा जमा ही नहीं था सतरोधन उस्ताद।

—दे इधर, हाथ बढ़ाकर सतरोधन पहलवान जागा के पैसे ले लिया।

नगीना और हरगुन ने कोई प्रतिवाद नहीं किया और वे दो-दो रुपया निकालकर दे दिए। अब हरिया की बारी आई। उसने कहा—पहलवान! मैं आज का नाल एक रुपया दे दूँगा, कल खेल नहीं हुआ, इसलिए कल का नहीं दूँगा।

—तो देख यह लाठी···पहलवान गुर्राया।

—लाठी से मत डरा पहलवान! हरिया अड़ गया।

—तुम्हें पिटकर थाना ले चलूँगा साले, नहीं तो निकाल पैसे। वह हरिया पर झपटा और उसकी चेट से दो रुपये के बदले तीन निकाल लिए। वह गालियाँ देता, लाठी घसीटते, जिधर से आया था, उधर ही चला गया। और सभी ज्यों-के-त्यों खड़े रहे।

हरिया की चेट में डेढ़-दो रुपये अब भी बच रहे थे। इसलिए वह बैठा रहा।

जागा ने कहा—मुझे अठन्नी पैंचा दे दे हरिया! ज़रा अन्तिम बार

अपने भाग्य का फैसला कर लूँ।

—मेरे पास पैसे बचे कहाँ ? दवा-भर के पैसे नहीं बचे···।

—मना मतकर अठन्नी के लिए हरिया···।

—तू मुझे कब एक नया पइसा भी दाव पर दिया है ?

—जाओ, मत दो, काम पड़ेगा तो न कहना···। जागा ने कहा।

—मत करना मेरा कोई काम···हरामी कहीं के। हरिया दाँत किटकिटाया।

—गाली मत दे साले, वरना दाँत तोड़ दूँगा, समझे। वे दोनों हाथापाई पर आमदा हो आए। सतरोधन पहलवान का गुस्सा वे एक-दूसरे पर उतारने लगे थे। इतने में नगीना उठ गया। वह बोला—'तुम लोग झगड़ते रहो, अब मैं नहीं खेलता···।' हरगुन भी उठ गया। हरिया ने कहा—'जीतकर भागना चाहते हो ? खेलना पड़ेगा'।

—तुम्हारे ज़मींदारी में नहीं बसा हूँ कि जब कहोगे, खेलूँगा, नहीं कहोगे, नहीं खेलूँगा···।' जागा भी एकवट गया और हरिया का पक्ष लेने लगा। वह बोला—'अब कभी नहीं बैठने देंगे तुम्हें नगीना···भगेड़ कहीं के।' अभी तू-तू मैं-मैं चल ही रहा था कि लाल टोपी पहने थाना का सिपाही आते देखा। वे लोग समझ गए कि सतरोधन पहलवान खबर कर आया होगा। इसलिए उसे देखते ही वे लोग भाग खड़े हुए।

वे भट्ठी आ गए। वहाँ पहिले ही से जमघट लगी थी। भट्ठी के अहाते में काफी शोर मची हुई थी। मजूर औरत-मर्द अपने-अपने ग्रुप बनाकर दारू पीने बैठे थे। कुछ नशे में आकर गाली-गलौज कर रहे थे, तो कुछ हाथा-पाई भी करते थे। कोई रो रहा था, कोई चिल्ला रहा था। कोई बेहोश होकर नंग-धड़ंग ज़मीन पर लोट गया था, कोई लोटने की प्रक्रिया में था। हरिया ने कहा—'चल जागा, बस्ती चलें।'

—पिओगे नहीं···?

—पैसे कम हैं यार···हेमोपति का दवा भी लेना है।

—मुझे भी तो चावल-दाल खरीदनी थी लेकिन, पैसे बचे ही नहीं।

—बच्चा ज़्यादा बीमार हो जाएगा तो क्या होगा···?

—वह ठीक हो जाएगा।

—तुम्हारे बच्चे और घरवाली आज खाएगी क्या···? हरिया पूछा।

—हम तब लौटेंगे, जब वे भूखे सो गए होंगे।

—लेकिन भूख होने पर तो नींद भी नहीं आती···।

—सो तो है।

—जागा के आग्रह पर हरिया 'देशी' की खिड़की पर खड़ा हो गया और पचास नम्बर का एक बोतल खरीद लिया। दस पैसे का पकोड़े खरीदा और जागा के पास आकर बैठ गया। बोतल का सील टूटा और मिट्टी की प्यालियों में ढ़ार कर पीने लगे।

—नशा नहीं हो रहा हरिया···? जागा अन्तिम घूँट पीते हुए पूछा।

—साला पानी मिलाता है···नशा कैसे हो···?

—एक बोतल तुम लाओ जागा, हरिया ने कहा।

—मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं बचा···।

—तो चल, घर चलें, जागा राजा।

—अभी ठहर जा हरिया···तब चलेंगे जब बच्चे, सो जाएँगे।

—अभी, जाने में भी घण्टा-भर लगेगा, चल ना···।

—अब नशा होने लगा, जागा राजा !

—हो, हो तो रहा है···!

—अगर बच्चे नहीं सोए रहेंगे तो क्या करूँगा, हरिया ?

—डपट देना, बस सो जाएँगे···।

—ना, ना हरिया, तुम मेरे बाप हो, रूक जाओ···।

—अबे साला, तू ही मेरा भाई है···चल ना।

—अब तक भट्ठी का अहाता खाली हो चला था। इक्के-दुक्के लोग नशे में पागल होकर बेसुध पड़े हुए थे, लौट रहे थे। वे दोनों झूमते हुए उठे और बस्ती की ओर जाती पगडण्डी पर बड़ गए।

—अमाँ साला, सतरोधन पहलवान बहुत बनता है। हरिया को कहते हुए मिचली आ गई।

—कम्पनी का दलाल है साला, इसलिए···।

—बाँस नहीं काटता तो भी मुंशी उसे पैसे देता है।

—मुशी को वह लड़कियाँ और लौंडे पहुँचाता है···। जुआ का नाल

पहुँचाता है उसे।

—मुंशी भी तो जंगल साहब को लड़की और 'इंगलिश' पहुँचाता है।

—जंगल साहब तो चूतियम सल्फेट है, अपनी बी···बी-बेटी तक, कम्पनी मनेजर को पहुँचाता है।

—जंगल साहब बहुत ख़ूँख़ार आदमी है···वंशी नेता को ख़ूब पिटवाया था वह···।

—अम्मा यार वंशी नेता आदमी तो अच्छा है। मजूरी बढ़ाने के लिए खूब लड़ता है। लेकिन साला कोई साथ ही नहीं देता, तो क्या करे बेचारा···?

—हाँ यार, जेल में सड़ता है, फिर बाहर आता है···फिर सड़ता है··· फिर बाहर आता है।

—अभी भीतर है या बाहर है, वंशी नेता ?

—चार-पाँच रोज़ पहले मिला था वह···कहने लगा—'दारू और जुआ छोड़ दो'।

—यदि हम लोग न पियें न खेलें, तो फिर क्या करें ? मुँह मराएँगे हम लोग···। वे दोनों हँसने लगे।

—वंशी नेता कहता तो ठीक है, लेकिन न पिएँ तो जिएँ कैसे···?

—···सो तो है हरिया। झागा के पैर लड़खड़ाए। वह पगडण्डी से नीचे गिरने ही वाला था कि हरिया ने सम्भाल लिया।—अबे साले, बस्ती आ गई, होश में चल। वह बोला।

—देखना, कहीं सतरोधन पहलवान हमारी बात छुपकर सुन न रहा हो। जागा ने शक प्रकट किया।

—सतरोधन पहलवान को वंशी नेता ही सीधा कर सकता है।

—मुंशी और पहलवान दोनों वंशी नेता से डरते हैं···।

—बस्ती में यह शोर कैसी ? हरिया ने पूछा।

—नारे सुनाई पड़ रहे हैं···जागा ने कहा।

—तो ज़रूर वंशी नेता आया होगा।

—जल्दी-जल्दी चल, देखें क्या हो रहा है।

—तुम्हारा बेटा तो ठीक होगा न···? हरिया का कलेजा धक् से रह

गया। वह कान खड़े कर नारे सुनने लगा···कहीं 'राम नाम सत्त है' की आवाज़ तो नहीं···? वे भागते हुए, उठते-गिरते बस्ती में पहुँचे।

—वंशी नेता आया है हरिया।

—वो साला इतनी रात गए क्यों आया रे ?

—मिटिंगें चल रही हैं···।

—काहे का मिटीन भाई मोरे ?

—मजूरी बढ़ाने के लिए, बोनस बँटवाने के लिए, दादागिरी और सूदखोरी बन्द कराने के लिए, और भट्ठी बन्द कराने के लिए···। वंशी नेता उन्हें समझाने लगा।

—भट्ठी बन्द होगी तो हम जियेंगे कैसे ? किसी ने कहा।

—भट्ठी बन्द नहीं होगी·· नहीं होगी···एक ही स्वर में कई मजूर बोल उठे। 'हरिया ने कहा—भट्ठी बन्द होगी तो हम हड़ताल कर देंगे।'

जागा अपनी लड़खड़ाती जुबान से कहा—यदि भट्ठी बन्द हो गई तो हड़ताल साली कैसे होगी ?···भट्ठी बन्द नहीं होनी चाहिए···।

भट्ठी जंगल साहब और कम्पनी मनेजर, दोनों ने मिलकर खोला है। वे जितना हमें मजूरी देते हैं, उतना हमें स्पिरिट पिलाकर, ले भी लेते हैं। कलेजा जलता है हमारा···पैसा जाता है हमारा···। और वे लोग मज़ा मारते हैं···। इसलिए भट्ठी बन्द कराना सबसे अधिक ज़रूरी है। वंशी नेता विस्तार से समझाया।

—लेकिन भट्ठी बन्द होगी तो हम पियेंगे क्या ? किसी ने पूछा।

—पीने से पहले खाने की चिन्ता करो, भाई मोरे। जो पैसे, जंगल साहब और मनेजर खींच लेता है, यदि वह रहता, तो इस झोंपड़ी की जगह अच्छा-सा मकान होता, बच्चे भूखों नहीं सो जाते और बच्चे शिक्षित होकर अच्छा-सा काम-काज करते।

—हाँ, वंशी नेता ठीक कहता है, बच्चे तो भूखों सो जाते हैं, हमारे घरों में। जागा को अन्न-दाना आने की प्रतीक्षा में बैठे बच्चों और घरवाली की याद हो आई ! कुछ औरत-मर्दों ने कहा कि वंशी नेता ठीक कहता है।

लेकिन कुछ लोग फिर अड़ गए—भट्ठी बन्द नहीं होनी चाहिए···।

—लेकिन, हड़ताल होगी कि नहीं—वंशी नेता चिल्लाया।

—वो तो होनी चाहिए···दो-चार लोग बोले।

—नहीं होनी चाहिए हड़ताल···एक ने अपनी प्रतिक्रिया दी।

—तुम कम्पनी के दलाल हो, कुत्ते हो, हरामी के पिल्ले हो···।

—पहले कहकर देखा जाय, बाद में हड़ताल किया जाय—एक ने सुझाव दिया।

—माँगें माननी होती तो महँगाई भत्ता घटा क्यों देते, वे ? वंशी नेता बताया।

—दादागिरी भी तो चलती है···। जागा ने कहा।

—जुम्मन मियाँ की बेटी का अभी तक क्यों नहीं पता चला···? नेता पूछा।

—मुंशी इतना ऊँचा दर से सूद क्यों लेता है···बोलो ?

—हर बस्ती के निकट कम्पनी ने शराब की भट्ठी क्यों खोल दिए···?

—मजूर बिलकुल चुप थे। वंशी के सवालों के उनके पास जवाब नहीं थे। उनके जो घाव भर रहे थे, वे फिर से रिसने लगे।

—तो ज़रूर होगी हड़ताल···ज़रूर होगी···तालियाँ बजने लगीं।

—कल से होगी हड़ताल ? किसी ने पूछा।

—नोटिस दिया जा चुका है, कल से होगी हड़ताल···। वंशी नेता उसे बताया।

—नारे गूंजने लगे···इनकिलास···जिन्दाबाद···मजूर एकता···। जिन्दाबाद···।

भीड़ छट गई। जागा और हरिया अपनी गली की ओर चल दिए। अभी उनका नशा उतरा नहीं था, इसीलिए मिटीन में कोई निर्णय नहीं ले सके थे।

—जागा ?

—हूँ।

—कल से हड़ताल होगी यार···।

—तो होने दो···।

—पीओगे कहाँ से···?

—जहाँ से जुए के लिएँ आएगा···।

—मुंशी से कर्ज ले लेंगे···।

—हड़ताल में मुंशी बहुत ऊँचे दर पर कर्ज देता है।

—कभी-कभी तो हड़ताल तुड़वाने के लिए, एक कन्नी भी उधार नहीं देता, वह।

—तो फिर कहाँ से आएँगे पैसे···? क्या खाओगे···? क्या पीओगे···?

—सो तो है जागा राजा···। ··तो नहीं करेंगे हड़ताल ?

—हाँ-हाँ, वंशी नेता को चिल्लाने दो···।

—हड़ताल में दुगुनी मजूरी मिलती है, ओवर टाइम भी मिलता है···।

—तब तो खा-पीकर मौज उड़ाएँगे···खूब खेलेंगे, मन मनाकर···।

—इसी हड़ताल में कमाकर बेटे का इलाज करा लूंगा, झोंपड़ी की फूस बदलवा लूंगा···सब काम निकल जाएगा।

—तो ठीक है, नहीं शामिल होंगे हड़ताल में···पक्का···।

—लेकिन, मजूरी कैसे बढ़ेगी हरि राजा ?

—सो तो है···।

—तो फिर···?

—शामिल हो जाएँगे हड़ताल में।

—लेकिन, हड़ताल चल नहीं पाएगी। वंशी नेता को जमकर पिटवाएगा, जंगल साहब। बस्ती में आग लगवा देगा···बाल-बच्चे भूखों मरने लगेंगे। डर के मारे सारे लोग भाग जाएँगे और हड़ताल टाँय-टाँय फिस होकर रह जाएँगी ··। हरिया ने अपनी वात कही। दोनों इस निर्णय पर पहुँचे, कि हड़ताल से कोई फायदा नहीं, इसलिए, शामिल नहीं होंगे हड़ताल में···।

वे अपनी-अपनी गली में घुस गए।

सुबह का धुँधलका छँटने के पहले ही वे लुकते-छिपते बस्ती से बाहर आ गए, जिससे कोई बस्ती का आदमी उन्हें काम पर जाते देख न ले, और पूछ न ले कि दोनों कहाँ जा रहे हो, हड़ताल के वक्त ? वे दबे पाँव पगडण्डी पर बढ़ते जा रहे थे। बिना कोई बातचीत किए, एकदम मौन।

—आज दुगुनी मजूरी मिलेगी और ओवर टाईम भी मिलेगा। जागा ने छेड़ दिया।

—आज खूब पीएँगे और जमकर अड्डा जमाएँगे···।

—लेकिन सतरोधन पहलवान झगड़ा करने लगेगा, तब···?

—वह तो पैसे भी छीन ले सकता है।

—तो उससे भीड़ जाएँगे दोनों।

—हम लोग आपस में झगड़ा क्यों करते हैं, हरिया?

—मैं कहाँ करता, सतरोधन पहलवान करता है झगड़ा।

—तुम हमसे भी तो लड़ते हो हरिया···। क्यों लड़ते हैं हम लोग एक-दूसरे से? बोल?

—जुआ और दारू के लिए···।

—जुआ और दारू तो नहीं कहते, कि आपस में लड़ो?

—जीतो तो भी लड़ो, हारो तो भी लड़ो, ज़्यादा पीओ तो भी लड़ो। ये ऐसी ही चीज़ें होती हैं, जो हमको आपस में लड़ाती हैं।

—तो हम लोग जुआ और दारू छोड़ क्यों नहीं देते?

—छोड़ कैसे दें? आदत जो लग गई है।

—आदत कैसे लग गई···? जागा ने सवाल किया।

—पहले-पहल जब बिहार से आया था, तो आदत नहीं थी। धीरे-धीरे सतरोधन पहलवान मेरा साथी बन गया और जुआ सिखाने लगा। पैसे घटते थे तो मुंशी से वह पैसे कर्ज दिला देता था। हारता गया···कर्ज बढ़ता गया और कितना भी मिहनत किया, पेट आज तक नहीं भरा···। इसी तरह आदत लग गई।

—अब तो सतरोधन पहलवान केवल 'नाल' वसूलता है। दस ग्रुप से कम रोज़ नहीं जमता···चार-चार रुपये वसूल करता है तो, रोज़ चालिस रुपये होता है। आधा मुंशी को देता है, आधा में आधा थाना को देता है और बाकी रख लेता है।

—असली मादर चो···तो मूंशी है। वही सतरोधन से यह सब कराता है, नहीं तो, वह आदमी तो अपना था। मुंशी किसी मजूर को कर्ज देता है और पीछे से पहलवान को भेज देता है कि पैसे छिन लाओ··चोट्टा

···साला···।

—तुम पीना कब शुरू किए जागा उस्ताद ?

—जब से भट्ठी खुल गई, वरना पहले मेरे बच्चे भूखों नहीं रहते थे। अब तो लाख चाहने के बावजूद, नहीं बचा पाता।

—मैं भी तभी से खाने कम लगा, पीने ज्यादा लगा···अब लाचारी है।

—वे बातचीत के मशगूल होकर पगडण्डी पर बढ़ते जा रहे थे कि अचानक वंशी नेता सामने आ गया, जैसे कहीं से टपक पड़ा हो। वे दोनों सकते में आ गए।

—आज जुलूस है, तुम लोग कहाँ जा रहे हो ? वंशी नेता ने सवाल किया। वो तो खैरियत यह थी कि ऐन मौके पर हरिया का दिमाग काम कर गया। बोला—वंशी भईया। हमर बेटवा बीमार पड़ गया है। हाट से 'हेमोपति' का दवा लेकर अभी लौटते हैं।

वंशी नेता आगे बढ़ गया तो उनके जान में जान आई।

—उधर से चल हरिया, फिर न कोई मिल जाय··। जागा रास्ता बदल दिया।

—अभी मुंशी गद्दी पर ही होगा, झट चल हरिया ने कहा।

—वह हमसे खुश होकर हमारी उन्नति 'लम्बरदार' में करा सकता है।

—वह पहले पहलवान को लम्बरदार बनाएगा, पहलवान कम्पनी का दलाल जो है।

—तुम क्या हो हरिया ?

—मैं दलाल नहीं हूँ।

—हड़ताल में काम करने मुंशी के पास जा रहे हो, दलाल नहीं तो और क्या हो ?

—तुम भी तो जा रहे हो जागा उस्ताद ?

—सो तो है हरिया, हम दोनों जा रहे हैं काम पर···।

—नहीं जाओगे तो भूखो मर जाओगे।

—लेकिन बस्ती का क्या होगा ? पूरी बस्ती भूखो मरेगी···।

—हम लोग तो मज़ा करेंगे···।

—वंशी राजा का क्या होगा ?

—उसे जंगल साहब लाठियों से पिटवाएगा, जेल भिजवा देगा, बस।

—वंशी नेता हमारे लिए ही लड़ रहा है। कब तक पिटता रहेगा वह ?

—जब तक नेतागिरी करेगा वह।

—हरिया ने कहा—जल्दी चल नहीं तो जुलूस आ गया तो गज़ब हो जाएगा।

—जुलूस हमसे तेज़ नहीं चल सकती, हरिया।

—जुलूस आदमी से हमेशा तेज़ चलती है, जागा उस्ताद··।

—तुम बात समझते ही नहीं हरिया—जागा ने कहा।

—तुम साले चालाक बनते हो जागा ? तुमको कुछ नहीं आता···।

—जुआ खेलकर देख लो कौन बुद्धू है और कौन चालाक ?

—शाम में चलेंगे अड्डा पर।

—लेकिन जुआ में तो झगड़ा होता है···आपस का।

—आपस में न हो तो किससे हो झगड़ा ?

—जो हमसे झगड़ा करता हो···।

—मुंशी करता है झगड़ा, सतरोधन पहलवान करता है, जंगल साहब और मनेजर करते हैं।

—कहते तो ठीक हो, जागा उस्ताद ! लेकिन, उनसे कैसे होगी लड़ाई ?

—हड़ताल से हो सकती है···।

—लेकिन हम तो काम पर जा रहे हैं।

—सो तो है हरिया···। जागा ने कहा।

—वे लोग हाट से आगे बढ़ चले थे। लेकिन, तभी उन्हें शोर सुनाई पड़ी। घूमकर उन्होंने देखा। बस्ती की ओर से जुलूस नारे लगाते हुए आ रही थी। वे घबराए।

नारे अब साफ-साफ सुनाई देने लगे थे।···हमसे जो टकराएगा···चूर ···चूर हो जाएग···इनकिलास···जिन्दाबाद···।

—किधर चलोगे हरिया ?

—तुम किधर जाओगे जागा उस्ताद ?

—किधर भी चलो···।

—तुम चलो न आगे ?

—जुलूस काफी करीब आ गई थी। वे स्तब्ध खड़े थे। वे अनिर्णय की स्थिति में थे। गगन-भेदी नारे गूँज रहे थे। लम्बी जुलूस तेज़ी से हाट की ओर मार्च कर रही थी। उनके पैर अनायास रुक गए। वे उधर ही बढ़ने लगे, जिधर से जुलूस आ रही थी।

—हम लोग कहाँ जा रहे हैं हरिया ? जागा ने पूछा।

—जुलूस में शामिल होने···।

—पीओगे कैसे, कहाँ से ?

—देखा जाएगा हरिया···जो होगा देखा जाएगा।

वे जुलूस की अगली कतार में शामिल हो गए।

आज दो साल हो गए। दो वर्षों से उन्होंने शराब नहीं पी, खाना नहीं खाया, जुआ नहीं खेला, फिर भी वे नारे लगा रहे हैं···इनक़िलास··· ···जिन्दाबाद···।

'भारत लिमिटेड' की छत पर लाल बत्ती जल गई है। मजूरों ने 'शुभ-लाभ' की तख्ती को हटाकर, गोबर पोत दिया है। और वे आज भी नारे लगा रहे हैं···इनकिलास · जिन्दाबाद।

० ०

अकुआ

बात महज़ इतनी थी कि प्रसाद मोटर्स के मालिक ने उसे पीट दिया था। यह इस तरह की कोई पहली घटना नहीं थी। इस शहर में तो रिक्शा-वाले रोज ही पिटते रहते हैं। कभी रंगबाज छात्रों ने पीट दिया तो कभी पियक्कड़ों ने। यानी रिक्शावालों की पिटाई यहाँ के लिए आम बात है। और इसी आम बात के तहत प्रसाद मोटर्स के मालिक ने उसे पीट दिया। अलबत्ता, प्रसाद मोटर्स के मालिक प्रसाद साहब ने यह कभी नहीं सोचा था कि लड़का दो झापड़ में ही जमीन धर लेगा और मुँह से खून के कुल्ले फेंकने लगेगा। प्रसाद साहब को अपयश तो लग ही चुका था। फिर भी प्रसाद साहब कोई खास परेशान नहीं थे। जानते थे कि मुहल्ले की बात है और कह-सुनकर मामले को आसानी से सुलझाया जा सकता था।

प्रसाद साहब इस बात के लिए निश्चिंत थे कि उन्हें मुहल्ले का कोई भी आदमी यह नहीं कह सकता कि वे उनके सुख-दुख से अलग कतराते रहते हैं। जब कभी मुहल्ले के लोगों को ज़रूरत पड़ी, उन्होंने उनकी सहायता आगे बढ़कर की। हर साल बजरंगबली और दुर्गापूजा में वे उन्हें सबसे ज्यादा चन्दा दिया करते हैं। उनके वर्कशाप के अगवारे चिकनी फर्श पर मुहल्ले के सैकड़ों लोग गर्मियों के दिनों में रोज़ रात को सोते हैं और प्रसाद साहब ने कभी एतराज़ नहीं किया। यदि मुहल्ले के लड़के को दो हाथ लगा ही दिए तो कौन-सी बड़ी बात हो गई।

जहाँ तक अज़हर मियाँ का सवाल है, उसके लिए भी प्रसाद साहब ने क्या कुछ कम किया है? उन्हें पूरी तरह याद है, अज़हर मियाँ का बाप उनके वर्कशाप के सामने बैठकर ही रिक्शा-साइकिल का पंचर बनाया करता था। प्रसाद साहब ने उससे कभी नहीं कहा कि उस जगह वह धन्धा

न करे। यही नहीं, एक दिन शफी मियाँ पंचर बनाते-बनाते वहीं ढ़ेर हो गया था। आदमी बुरा नहीं था। मुहल्ले के लोगों ने उसकी मिट्टी दफ़न के लिए चन्दा लगाया था। मुहल्ले के लोग अज़हर मियाँ को लेकर प्रसाद साहब के यहाँ गए थे। प्रसाद साहब को याद तो नहीं आता। लेकिन, उन्होंने कुछ-न-कुछ ज़रूर दिया था, शफी मियाँ की लाश को हवाले लगाने के लिए। यह कोई मामूली अहसान नहीं था, प्रसाद साहब का, मुहल्ले वालों पर और खुद अज़हर मियाँ पर भी। प्रसाद साहब को इस बात की कत्तई आशंका नहीं थी कि उनके अहसान के तले दबे मुहल्ले के लोग इस घटना को लेकर चूँ भी करेंगे। फिर भी, पता नहीं क्यों, ठहर-ठहरकर प्रसाद साहब का दिल धड़क उठता था और उन्हें अपनी ठीक स्थिति के प्रति भ्रम होने लगता था।

सोफे पर अधलेटे पड़े-पड़े प्रसाद साहब ने यह अनुमान लगा लेना ज़रूरी समझा कि उन्हें कहाँ-कहाँ से ख़तरा हो सकता है। वैसे तो, इस मुहल्ले में एक भी ऐसा जानदार आदमी नहीं, जो प्रसाद साहब से आँख भी मिला सके। पूरा मुहल्ला ही भिखमँगों से भरा पड़ा है। किसी को भी दो जून की रोटी कायदे से नसीब नहीं होती। झुग्गी-झोंपड़ियों की गन्दगी के कारण शरीफ लोगों का इधर आना-जाना भी दुष्वार रहता है। सड़क और गलियों की तमाम नालियों पर नंग-धड़ंग लड़के-लड़कियाँ टट्टी कर-कर छीछलेदार किये रहते हैं। शहर-भर के रिक्शा वाले, खोंमचे वाले, चाय-पान की गुमटियों वाले और ठेले वाले, सारे के सारे न जाने कहाँ से आकर इसी मुहल्ले में बस गए हैं।

जब कभी वक्त मिलता है और प्रसाद साहब अपनी इमारत की छत पर चढ़ते हैं तो उन्हें पूरा मुहल्ला बेजान लगता है। मुहल्ले के मरियल लोगों पर तरस तो आती ही है, गुस्सा भी आता है। दो-चार लोग हैं भी, तो वे भी खपरैल में ही रहते हैं। उनमें एक मास्टर है, एक बेटनरी कंपाउंडर एक वकील और एक कलट्टरी का किरानी। मुहल्ले-भर में, सभ्य लोग के नाम पर यही दो-चार लोग हैं। लेकिन उनकी भी हस्ती क्या है, प्रसाद साहब से छुपा नहीं है। प्रसाद साहब को अपने मकान के आगे-पीछे का माहौल बहुत कैसा तो लगता है। उनकी कतई इच्छा नहीं थी कि इस

गन्दी बस्ती में जमीन लें और नए ढंग की शानदार इमारत खड़ी करें। लेकिन माटी के मोल जमीन मिल गई तो प्रसाद साहब ने ले लिया। प्रसाद साहब हैं तो आशावान आदमी। वे यह सोचकर प्रसन्न हुआ करते हैं कि एक-न-एक दिन शहर नए ढंग से खड़ा होगा और इन झुग्गी-झोपड़ियों और खपरैल मकानों की जगह शरीफ लोगों की अच्छी बिल्डिगें खड़ी हो जाएँगी और तब उनकी इमारत झोंपड़ियों की मनहूसियत की छाया से बच पाएगी···।

अचानक प्रसाद साहब के दिमाग में एक बात कौंध गयी। उन्हें तेजा भक्त की याद हो आई। पिछले वार्ड कमिश्नर के चुनाव में, पहले तो प्रसाद साहब को लगा कि तेजा भगत नाम का कोई असरदार आदमी रहता है, इस मुहल्ले में। प्रसाद साहब को कमी किस बात की? किसी दूसरे आदमी की वार्ड-कमिश्नरी में मुहल्ला रहे, यह बात प्रसाद साहब को पसन्द नहीं थी। वे धड़ल्ले से चुनाव में उतर गए थे। मास्टर साहब, जो पहले से ही वार्ड-कमिश्नर थे, प्रसाद साहब के भय से ही चुप बैठ गए। उन्होंने अपनी उम्मीदवारी वापिस कर ली। ठहरा तेजा भगत, तो उसके लिए प्रसाद साहब को ज्यादा फ्रिक भी नहीं थी। दाने-दाने के बिना जिसका मुँह बसा रहा हो, वह भला प्रसाद साहब के सामने कितने पल ठहरता। एक तरह से प्रसाद साहब और उनके लोगों ने पूरे मुहल्ले को खरीद लिया था। उन्होंने अपनी पूरी शक्ति इस चुनाव में लगा दिया था। उन्हें पूरी-पूरी सम्भावना थी कि भारी मतों से विजयी होंगे। लेकिन, रातों-रात मत बदल गए, बदल क्या गये बदलने ही वाले थे। परिणाम जब सामने आया तो प्रसाद साहब मुँह के भरे गिरे। तेजा भगत रिकार्ड के मतों से जययुक्त हुआ था। प्रसाद साहब की इस बात के लिए काफी तौहिन भी हुई थी कि एक भैंस-गाय दूहने वाले टूटपूँजिया आदमी ने प्रसाद साहब को पानी पिलाकर रख दिया। तभी प्रसाद साहब ने इस मुहल्ले के प्रति अपने मन में धारणा पक्की कर ली थी। उन्होंने इस पूरे महल्ले को चोर-लफँगे और बेइमानों का मुहल्ला घोषित कर दिया था। उनके मन में तभी से यह बात बैठ गई कि ऐसे नीच लोगों का कोई भरोसा नहीं कि कब क्या कर दें,

जिसकी बुनियाद ही गलत हो…! प्रसाद साहब का गला सूखने-सा लगा। उन्हें यह महसूस होने लगा कि यदि इस मामले में तेजा भगत आ पड़ा तो बात काफी आगे तक बढ़ सकती है।

तेजा भगत और मुहल्ले के गहराते भय ने प्रसाद साहब की नींद हराम कर दी। प्रसाद साहब फोन लेकर बैठ गए। उन्होंने कलट्टर से बात-चीत की! दारोगा-कोतवाल से बात-चीत की, मोल-तोल भी किया। पटना फोन लगाए। विधायकों से राय माँगी और मिनिस्टर से सलाह ली। तब कहीं जाकर प्रसाद साहब की जान में जान आई। अब प्रसाद साहब स्वयं को पूरी तरह सुरक्षित महसूस करने लगे थे। सभी ने एक स्वर से यही बात दोहरायी थी कि उनकी सुरक्षा के लिए जो कुछ भी करना पड़ेगा, किया जायेगा…। थाना-कोतवाल को ऊपर से ही आदेश आ चुका था—इतने सतर्क रहो कि पत्ते न खरखरायें।

अब प्रसाद साहब चिंतामुक्त होकर सो सकते थे। लेकिन, पता नहीं क्यों, पलकें सटती ही नहीं थीं। प्रसाद साहब ने एक नौकर को बुलवाया और उसे हुसैन साहब को बुलाने के लिए भेज दिया। हुसैन साहब इस नगर के संघर्षशील नेता और गरीबों के रहनुमा के रूप में जाने जाते हैं। हुसैन साहब को विधान-सभा का चुनाव हारे अभी बहुत दिन नहीं बीते। वे आज भी जनता की सेवा में लगे हुए हैं। चुनाव हारने के बाद, हुसैन साहब निराश नहीं हुए और इतना भर कहा…खुदा अभी और काम लेना चाहता है। हुसैन साहब यदि चुनाव जीत गए होते, तो आज किसी मिनिस्टर से कम नहीं होते।

नौकर ने लौटकर बताया कि हुसैन साहब ने आने से साफ-साफ इन्कार कर दिया। प्रसाद साहब तो उबल पड़े। गुस्से में उन्होंने हुसैन साहब के नाम सैकड़ों गालियाँ दी…स्साला नेता बनता है…चुनाव के समय सैकड़ों बार सलाम ठोंकता था…देख लूँगा, साले-हरामी-मादरचो…। फिर प्रसाद साहब ने अपने ही मन को समझाया, बेकार परेशान होते हो। आखिर, कम ही सही, लेकिन मुहल्ले में अपने भी कुछ विश्वस्त आदमी हैं। कम-से-कम, वर्कशाप में काम करने वाले मजूर तो इधर-उधर नहीं कर सकते?

प्रसाद साहब अभी सोच ही रहे थे कि रामसिंह चला आया। उसने अस्पताल के बारे में बताया कि अजहर मियाँ को अभी तक बेहोशी के दौरे आ रहे थे और डॉक्टरों के बीच आपस में बातचीत चल रही थी कि लड़के को रिक्शा खिंचते-खिंचते टी० बी० का रोग लग गया है। उसने प्रसाद साहब को आज़ाद चबूतरे के बारे में भी बताया कि वहाँ कौन-कौन से लोग क्या-क्या बातें कर रहे थे। इससे भी ख़तरनाक बात यह थी कि रामसिंह ने हुसैन साहब को अस्पताल जाते हुए देखा था और उनके पीछे लग गया था। उसकी बूढ़ी अम्मी हुसैन साहब के पाँव पकड़ रो-रोकर पूरी घटना बयान कर रही थी। अजहर मियाँ रिक्शा लिए उनके वर्कशाप के सामने बैठा सुस्ता रहा था। इतने में एक गुलथुल आदमी आया और वर्कशाप से कोई भारी सामान उठवा लाया। फिर उसने रिक्शेवाले को बुलवाया। अजहर मियाँ उसके पास गया, लेकिन वजनदार सामान देखकर उसने जाने से इन्कार कर दिया। वह बेहद थका हुआ था। और उसका दम फूल रहा था। वह देर तक ना-नुकुर करता रहा। तभी प्रसाद मोटर्स के मालिक गालियाँ देते हुए उसके पास आए और कहने लगे कि साले को दो-चार हाथ लगाइए···खुद जाएगा। प्रसाद साहब अपने जूता खोलकर चलाने लगे और उनका नौकर रामसिंह ने भी मारा। कहते-कहते अजहर की माँ दहाड़ मारकर रोने लगी। हुसैन साहब ने उसे सांत्वना दिलाई डॉक्टरों से मिले और फिर चले गए। उनके लौटते ही रामसिंह सारी खबर, लेकर लौटा और इसीलिए उसे आने में देर हुई।

प्रसाद साहब ने अस्पताल के सिविल सर्जन से बातचीत की और उनसे आग्रह किया कि अब लोगों को यही बताया जाए कि लड़के को कोई खास चोट नहीं आई और वह बहुत जल्द ठीक हो जाएगा। अस्पताल के डॉक्टर, प्रसाद साहब की आवाज़ में ही उनके शब्दों को लगातार दुहराते रहे।

रामसिंह दिनेसर पानवाले को बुलाया। प्रसाद साहब ने उसे आजाद चबूतरे की ड्यूटी लगा दी कि वह तब तक वहीं रहे, जब तक सारे लोग लौट नहीं जाते और उनकी बातों, उनकी योजना को सुनकर आए कि वे क्या करना चाहते हैं। साथ ही ; उनमें से कौन क्या कहता है, कितने लोग

अपने पक्ष में लिया जा सकता है, और कौन-कौन पक्के दुश्मन हैं, इस बात का भी अन्दाज़ लगाए।

इस मुहल्ले का आज़ाद चबूतरा एक ऐसा सार्वजनिक स्थान है, जहाँ हमेशा सौ-पचास की बैठकी लगी ही रहती है। इनमें अधिकांश लोग मुहल्ले के ही होते हैं। रिक्शावाले आज़ाद चबूतरे के पीपल की छाया में आराम करते हैं, ठेला वाले अपने ग्राहकों की प्रतीक्षा में यहीं बैठते हैं। चीनिया बादामा और खोमचा वाले चबूतरे पर बैठे-बैठे अपना सौदा बेचा करते हैं। प्रसाद मोटर्स के कर्मचारी और सिनेमा के कर्मचारी, सभी आज़ाद चबूतरे पर ही बैठते हैं और टिपिन की रोटियाँ तोड़ते हैं। सदर अस्पताल के कम्पाउण्डर और सफाई वाले, जेल के वार्डर और अस्पताल के मरीज़, सभी यहाँ बैठते हैं। पीपल के पेड़ के नीचे किसी ने दो-चार पत्थर के टुकड़े रख दिए हैं, जिसकी पूजा के लिए मुहल्ले की औरतें जुटा करती हैं। कभी-कभी लावारिस पिल्लों को भी इन पत्थरों का उद्धार करते देखा जाता है।

आजाद चबूतरे की एक अलग परम्परा है। मुहल्ले के स्तर पर चाहे कितनी बड़ी समस्या उठ खड़ी हुई हो, आजाद चबूतरा ही उसका सही समाधान देता है। चबूतरे पर भी लोग इकट्ठे होते हैं, सामूहिक बहसें होती हैं और सर्वसम्मत से, कोई भी निर्णय लिया जाता है। प्रसाद मोटर्स के मज़दूरों या सिनेमा के कर्मचारियों या अस्पताल के सफाई करने वालों की हड़तालों की घोषणा इसी चबूतरे से हुआ करती हैं। पर्व-त्योहार के दिनों में धार्मिक आयोजन भी इसी चबूतरे पर किए जाते हैं। मुहल्ले में जब कोई मरता है, चाहे जिस किसी जाति का क्यों न हो,उसकी अर्थी आजाद चबूतरे से ही उठायी जाती है। यानी, आजाद चबूतरा मुहल्ले की सामूहिकता का प्रतीक बन गया है···।

जब दिनेसर पान वाला आजाद चबूतरा पहुँचा, तब तक बातें जमकर चल रही थीं। तेजा भगत, मकसूद मियाँ, बुझावन महतो, मलाई साव, सभी आजाद चबूतरे पर आ जुटे थे। ताज्जुब की बात यह है कि परमेसर बाबा भी पधारे थे। परमेसर बाबा यजमानी कमाने वाले पण्डित हैं। इसलिए मुल्हले के लोगों पर उनकी बात का असर हुआ करता है। साथ ही आज

मास्टर साहब भी चबूतरे पर आसन लाए थे।

'हम त परेशान बानी बाबू। इ सेठवा को गर्मी हो गया है। एकरा कोठा से हमारे आँगन में मांस का टुकड़ा फेंका जाता है। हमारा धरम-करम नष्ट होता है। हम उल्टा जाप करके एका नाश कर देब'···परमेसर बाबा गुस्से में काँप रहे थे।

काँपने से क्या होगा बाबा ? इसकी खातिर तो लड़ना होगा···मिल-जुलकर लड़ना होगा। नहीं तो कोई दोसर उपाय है नहीं। आज अजहरवा पिटाया, कल बुझावन महतो पिटाएगा आ परसों तेजा भगत भी पिटा जाएगा···एक दिन उ पूरे महल्ले को निगल जाएगा···निलाम पर चढ़ा देगा···।' तेजा भगत ने अपनी प्रतिक्रिया दी।

'तेजा भइया ठीक कहत हैं। मिल-जुल के लड़े परी। कोई एक ठो पिटाता है तो हम सोचते हैं कि उ साला पिटाया तो हमारे बाप का क्या ? इ भावना जब तक रहेगा तब तक हम लोग पिटते ही रहेंगे।' मकसूद मियाँ बोल रहा था।

बुझावन महतो ने कहा—'एक ठो पाप तो नहीं करत है। हम लोग रोज देखते हैं कि रात में नया-नया छोकरिया इसके घर में आवत है। हम लोग इ सब पाप सहत जात। अमरजेंसी में वर्कशाप के आस-पास के सब छोट-छोट दुकान के गुमटी वही उखड़वा देत रहे। अब अमरजेंसी हट गया तो भी कहता है कि गुमटी न गड़बावे देव···सरकार बदल गइला से का भइल······अब त हम लोग भूखे मरत बानी······।' मलाई साव कह रहा था।

···जब तक चुप रहोगे भइया, वह डण्डा करता ही जाएगा। उसे अकेले कोई रोक नहीं सकता। मिलकर लड़े बिना कोई उपाय नहीं है···। मकसूद मियाँ ऊँची आवाज़ में बोला।

उनकी बातों को अस्पताल की एक बुढ़िया मेहतरानी भी बैठी सुन रही थी। उसने कहा—'निस्तनिया, आग लग जाए ओकरा कोंठा में··· स्टुडंडों से न डरत है।'

तय हुआ कि हुसैन साहब से मिलकर राय-मशविरा किया जाए कि इस अत्याचार के खिलाफ क्या कुछ किया जा सकता है और हुसैन साहब

किस हद तक सहयोग करेंगे। कुछ लोग हुसैन साहब की खोज में चल दिए।

दिनेसर पान वाले ने प्रसाद साहब को तमाम सूचनाएँ दीं तो उन्हें और अधिक चिन्ता हुई। उनके अन्तर में यह बात बैठती जा रही थी कि अब निश्चय ही कुछ-न-कुछ होकर रहेगा। उन्हें अब तक उनकी सुरक्षा के सम्बन्ध में जितने आश्वासन मिले थे, सभी के सभी खोखले मालूम पड़ने लगे थे। प्रसाद साहब सोचने लगे थे कि वह कौन-सी ऐसी चीज़ मुहल्ले वालों में है, जिसके आगे मिनिस्टर और कलक्टर तक के आश्वासन खोखले लगने लगते हैं। प्रसाद साहब को लगा कि यह मुहल्ले के लोगों की गरीबी की एकता ही तो है···। और इस एकता को तोड़ देना आसान काम है···। इतना कुछ सोचने-समझने के बावजूद प्रसाद साहब अन्दर से सहमे हुए थे। वे रात-भर फोन के नम्बर मिलाते रहे।

सुबह क्या हुई—डर, खौफ एवं आतंक का साम्राज्य छा गया। रिक्शे पर लाउडस्पीकर टाँगकर पूरे शहर में यह प्रचारित किया जा रहा था कि अजहर मियाँ रिक्शा वाला, जो एक छात्र भी है, पर प्रसाद मोटर्स के मालिक द्वारा किए गए कातिलाना हमले के विरोध में आज पूरा शहर बन्द रहेगा और दोपहर में एक विशाल जुलूस आजाद चबूतरे से निकलेगा, जो नगर की मुख्य सड़कों से होता हुआ कलक्टर की कोठी पर जाएगा और घटना की न्यायिक जाँच की माँग करेगा। इस जुलूस का नेतृत्व हुसैन साहब को करना था, यह भी तय था।

इस सूचना के साथ ही, नगर में एक विचित्र तरह की सरगर्मी पैदा हो गयी थी। लोग छोटे-छोटे जत्थों में बँटकर सड़कों और नुकुड़ों पर खड़े हो गये थे और प्रसाद मोटर्स के मालिक की इस करतूत पर अपनी तीखी प्रतिक्रिया जाहिर कर रहे थे। सड़कों पर पुलिस वालों के सिवा कोई सवारी नज़र नहीं आती थी। रिक्शा चालकों ने अपने रिक्शों को सड़कों पर लगाकर ट्राफिक को जाम कर दिया था। उनके जत्थे नगर के भिन्न-भिन्न नुकुड़ों पर जोशीले नारे लगा रहे थे। बात लू की लपटों की तरह गली-गली, घर-घर में प्रवेश कर गयी थी। लोगों के कान खड़े थे। अफवाहों का बाजार भी गर्म था। लोग गुस्से में भी थे।

सदर अस्पताल भीड़ से खचाखच भर गया था। आजाद चबूतरे के पास हजारों की भीड़ जुट आयी थी। नगर में राइफलधारियों की गश्त तेज कर दी गयी थी। प्रसाद साहब के हर आदमी हर पल नई-नई खबरें ला रहे थे। अभी-अभी प्रसाद साहब को सूचना मिली कि अजहर मियाँ के नाम पर नगर के विभिन्न कॉलेजों से छात्रों के जुलूस चल चुके हैं और वे आजाद चबूतरे की ओर बढ़ रहे हैं।

छात्रों के नाम से प्रसाद साहब बहुत घबराया करते हैं। छात्रों के जुलूस की बात सुनकर वे काँप गए। वे बहुत घबराए हुए थे। उन्होंने अपने आदमियों को भेजा कि वे किसी तरह से, किसी भी कीमत पर हुसैन साहब को रोकें कि वे जुलूस नहीं निकालें। छात्रों के जुलूस का मतलब होता है, तोड़-फोड़, तोड़-फोड़ का मतलब होता है लाठी-गोली चार्ज और इसका मतलब है, प्रसाद साहब की गर्दन में फाँसी का फँदा…।

दो-तीन स्थानीय छुटभैय्ये नेता आए और उन्होंने प्रसाद साहब को धैर्य दिलाया। उन्होंने इस मामूली घटना को प्रसाद साहब द्वारा राजनीतिक रग दिए जाने का घोर विरोध किया और फिर उन्होंने प्रस्ताव रखा कि कुछ ले-देकर सलट लिया जाए तो अच्छा हो। प्रसाद साहब को कोई एतराज नहीं था। वे किसी भी कीमत पर जुलूस को रोकना चाहते थे। उन्होंने लोकल नेताओं को हुसैन साहब से बात-चीत करने के लिए भेज दिया।

जुलूस की तैयारियों में हुसैन साहब बेहद परेशान थे। उन्हें बात करने की भी फुर्सत न थी। पहले तो उन्होंने एकदम से ना कह दिया, लेकिन बाद में बहुत कहने-सुनने के बाद वे तैयार हुए। वह भी इस शर्त पर की तोड़-फोड़ और हिंसा को रोकने की जिम्मेवारी वे अपने ऊपर लेते हैं और वे जुलूस को मौन जूलूस बनाकर लें चलेंगे। लोकल नेताओं ने उन्हें पकड़कर अपने साथ ले लिया।

आजाद चबूतरे के पास भीड़ उग्र हो रही थी। जुलूस निकालने का समय हो चला था और भीड़ हुसैन साहब के आने की प्रतीक्षा में खड़ी थी। तभी किसी ने आकर सूचना दी कि अजहर मियाँ मुँह से खून के कुल्ले फेंक रहा है और उसके बचने की अब कोई सम्भावना नहीं है। यह बात भीड़

में बिजली की भाँति फैल गयी और गगन-भेदी नारे गूँजने लगे। तभी छात्रों के जुलूस भी आ गए। भीड़ पर काबू बनाए रखना कठिन हो गया। हुसैन साहब के लिए ज्यादा देर के लिए रुकना सम्भव नहीं था। तेजा भगत से रहा नहीं गया और वह जुलूस की शक्ल बनाकर चल पड़ा। उसके पीछे हजारों की भीड़ जोशीले नारे लगाते चल पड़ी। हुसैन साहब के निकट सहयोगी अब अनके आने की प्रतीक्षा में ज्यादा देर रुक नहीं सकते थे। जुलूस का नेतृत्व करने का सुनहरा मौका उनके हाथ से निकलता जा रहा था। इसलिए, वे भी जुलूस के साथ हो लिए। जुलूस के पीछे-पीछे राइफलधारियों से लदी भानें चल रही थीं। जुलूस प्रसाद मोटर्स की ओर बढ़ रही थी।

जुलूस अभी प्रसाद मोटर्स की ओर बढ़ ही रही थी कि मुहल्ले के तीन-चार नौजवानों ने चौंकाने वाली सूचना दी। सूचना देने वालों में दिनेसर पान वाला भी था। उन लोगों ने बताया कि हुसैन साहब को प्रसाद साहब के घर में घुसते हुए उन्होंने देखा है। तेजा भगत को विश्वास नहीं हुआ पहले। वह हुसैन साहब के बारे में ऐसा सोच भी नहीं सकता था। खबर जुलूस में फैल गयी। भीड़ और अधिक उत्तेजित हो गई। कॉलेज के कुछ लड़कों के साथ मुहल्ले के लड़के प्रसाद साहब के बालरेज पर फाँद गए और अन्दर प्रवेश कर गए। और जब वे बाहर निकले तो लोगों को आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। लड़के, प्रसाद साहब और हुसैन साहब, दोनों को जबरन खिचकर सामने लाए। भीड़ को यह यकीन नहीं हो रहा था कि यही हुसैन साहब हैं जो जुलूस निकलवाने के लिए इतने गर्म-गर्म भाषण दे रहे थे…।

इसके बाद लात-जूतों की बौछार शुरू हो गई। प्रसाद साहब और हुसैन साहब के कपड़ों की धज्जियाँ उड़ रही थीं। लोगों ने यह भी देखा कि हुसैन साहब की जेबों से नोटों के बण्डल झर रहे थे। लोगों का गुस्सा और बढ़ा और वे अधिक उग्र हो गए। वर्कशाप के शीशे की दीवारें चूर-चूर हो गईं। ऐसा लगने लगा कि भीड़, प्रसाद साहब की इमारत में आग लगा देगी। लेकिन, तभी भीड़ में भाग-दौड़ मच गई। राइफलें खटखटाने लगीं और प्रसाद साहब तथा हुसैन साहब की सुरक्षा के लिए पुलिस की लाठियाँ

बरसने लगीं। उन लोगों ने भीड़ को तीतर-बीतर कर दिया और प्रसाद एवं हुसैन साहब को बचा लिया गया।

शाम में प्रसाद साहब के हितों-मित्रों एवं शुभचिन्तकों की भीड़ जुटी। प्रसाद साहब गुस्से से लाल थे और उन्होंने ललकारते हुए कहा था '…एक-एक साले को देख लूँगा। ज़रा वक्त आने दीजिए…सिर्फ हुसैन साहब और आप लोगों का सहयोग चाहिए…।

० ०

विरासत की आग

गरीबा साव वल्द बुझावन साव मोकाम मोहितपुर थाना बड़हरा जिला भोजपुर परगना बिहार के नाम स्थानीय कोतवाली में दर्जनों मुकदमें दर्ज कराए गए थे। आरोप यह था कि गरीबा साव ने गाँव के कई रईस लोगों से कागज़ पर ठेप्पा लगाकर हजारों रुपये कर्ज के तौर पर लिए और यथा-समय उन कर्जों का भुगतान न कर सारी रकम हड़प जाने की कोशिश की। गरीबा साव पर, कर्ज अदायगी नहीं करने और शरीफ एवं प्रतिष्ठित लोगों से धोखाधड़ी करने के दफों के तहत वारण्ट जारी किया गया था। मोटा-मोटी, आठ-दस हजार रुपयों का मामला था।

गरीबा मेरे गाँव का मूल बासिंदा नहीं था। दियारा क्षेत्र में गंगा के तेज कटाव के कारण, कोई पच्चीस-तीस साल पहले गरीबा के बाबू अपनी घर-गृहस्थी समेटकर भाग आए थे और मेरे गाँव में आकर बस गये थे। एक बेवा औरत के मर जाने के बाद उस बुढ़िया का माटी का बना खप्परफूस मकान खाली पड़ा था। गाँव के मालिक-सरकार से विनती-चिरौरी करके, गरीबा के बाबू ने उस मकान को ले लिया था और मामूली मरम्मतें कराकर वे उसमें रहने लगे थे। तब उनके पास कोई सौ-पचास रुपये की अपनी छोटी-सी पूंजी थी, जिसे लगाकर उसी मकान के एक कोने में उन्होंने नून-तेल-मसाले की एक छोटी-सी टुटपूंजिया दुकान खोल ली थी।

उन दिनों जमींदारी उन्मूलन के हंगामे चल रहे थे और जमीन के टुकड़े सस्ते दर पर फेंके जा रहे थे। अपनी सारी पूंजी जुटाकर गरीबा के बाबू ने गाँव की बंजर बलुआही जमीन के एक टुकड़े को खरीद लिया था। उस जमीन पर दिन-रात खून-पसीना एक कर उन्होंने उस बंजर को खेत के रूप में बदल डाला था, तब कोई तीन-चार साल बाद, दो-तीन मन अन्न-दाना

मुहैया हो पाता था। गाँव के लिए गरीबा के बाबू नए थे। उनकी गाँव में कोई साख भी नहीं थी जो कहीं उधार-पैंचा भी मिल पाता। परिवार के लिए दो जून की रोटी भी बहुत मुश्किल से जुगाड़ कर पाते थे। उन्हीं दिनों गरीबा उनके घर में आ धमका था।

पास-पड़ोस के लोगों ने उस नवजात शिशु के लिए कई नाम सुझाये थे। लेकिन गरीबा के बाबू को वे नाम पसन्द नहीं आए। गरीबा के बाबू बोले—गरीब बाप का बेटा गरीब ही रहेगा और उसका नाम पड़ गया, गरीबा साव।

गरीबा मेरा हमउम्र था। मेरे पुश्तैनी मकान के ठीक पीछे, संकरी गली के बाद, उसका ढहता-ढिमलाता घर था। मेरे और गरीबा के बीच बचपन से ही गहरी दोस्ती थी। हमारी इस दोस्ती का माध्यम था, गरीबा के घर का कोल्हू मशीन। गरीबा के बाबू ने उसकी जन्म के साल ही नून-तेल की दुकान वाले कमरे में कोल्हू की एक मशीन बैठा ली थी। गाँव-भर के किसानों और बड़े घरों का सरसों, इसी कोल्हू में आया करता और तेल निकालने के लिए गरीबा के बाबू को मटर-खेसारी और दूसरे अनाज मिला करते। गरीबा के बाबू ने धीरे-धीरे अपनी शुद्ध सरसों तेल की दुकान भी खोल ली।

कोल्हू चलने की चर्र-चर्र चोयं-चर्र-मर्र आवाज़ मुझे बेहद कर्णप्रिय लगा करती थी। कोल्हू की पटरी पर बैठकर बैल को हाँकने का भी अपना एक अलग मजा हुआ करता। मैं कोल्हू की पटरी पर बैठने का लोभ संवरण नहीं कर पाता था और अपनी इस कोशिश के दौरान मैंने गरीबा से दोस्ती कर ली थी। दिन-भर कोल्हू की पटरी पर बैठे हम दोनों बैल को हाँकने और एक ही धुरी पर गोलाकार घूमते रहने का मजा लेते रहते।

उन दिनों, मेरी पढ़ाई के लिए मुझे शहर ले जाने की बात चल रही थी। मेरे शहर जाने की बात सोच-सोचकर गरीबा बहुत उदास हो जाया करता और अपने बाबू से खुद को शहर भेजकर पढ़ाने की बात कहा करता। उसके बाबू अपने सामर्थ्य के बारे में सोच-सोचकर दुःखी हुआ करते। वे अक्सर सोचा करते कि यदि गरीबा पढ़-लिख नहीं सका, तो

उन्हीं की तरह, जीवन-भर कोल्हू का बैल हाँकता रह जाएगा···

गरीबा के बाबू को तब बड़ा शकून मिला था, जब गाँव में प्राईमरी स्कूल खुलने की बात उसके कान में पड़ी थी। वे इस योजना पर अमल करने वालों की भुरी-भुरी प्रशंसा किया करते। जब से उन्होंने गाँव में स्कूल खुलने की बात सुनी थी, कल्पना के सागर में वे गोता लगाना शुरू कर दिये थे। वे सोचा करते कि प्राईमरी स्कूल के वाद हाई स्कूल खुलेगा और गरीबा पढ़ेगा, लिखेगा और एक दिन, जब साहब बन जाएगा, हाकिम-हुक्मरान बन जाएगा, तो फिर गाँव में इतनी बुरी निगाह से लोग उसे नहीं देखा करेंगे। गाँव के बाबू साहबों के माफिक उसकी भी इज्जत-प्रतिष्ठा होगी···गरीबा की औल्लादें होंगी और उन्हें कोल्हू का बैल हाँकते रहने से मुक्ति मिल जाएगी···कि गरीवा एक-न-एक दिन लाट-कल्ट्टर ज़रूर बनेगा···गाँव में मन्त्री जी आए थे और बड़ी धूम-धाम से गाँव के प्राईमरी स्कूल का उद्घाटन हुआ था। उस दिन गाँव के छोटे से बड़े, सभी लोगों में खुशी की लहर दौड़ गई थी···अब गाँव का एक भी बच्चा अनपढ़ नहीं रह जाएगा···गरीबों के लड़के पढ़-लिखकर ऊँची-ऊँची नौकरियों में लगेंगे और देश की सेवा करेंगे···मन्त्री जी ने अपने उद्घाटन भाषण में गाँव के गरीबों को आह्वान किया था कि वे अपने बच्चों को स्कूल जरूर भेजें, ताकि देश को आजादी मिलने का, सही अर्थ सार्थक हो सके···

गरीबा के बाबू धन्य-धन्य हो गए थे, मन्त्री जी की बात सुनकर··· ···सचमुच अब जाकर सुराज आया है···वे गाँव के हरिजन टोली, मुशहरटोली और नान्हटोल में घूम-घूमकर लोगों को समझाया करते कि बिना विद्या लक्ष्मी आ ही नहीं सकती···अपने लड़कों को स्कूल में पढ़ाओ-लिखाओ और जब लड़का पढ़-लिखकर सहाब बन जाव, तो फिर राज करो···राज।

स्कूल के सेक्रेटरी का पद गाँव के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं समृद्ध-सम्पन्न बबुआन, अम्बिका ठाकुर को दिया गया था। यह उन्हीं की कृपा थी, जो मन्त्री जी ने इस दूर-दिहात में धूल फाँकते और धूल के बगुले उड़ाते हुए इस गाँव में आने की तकलीफ उठायी। वरना ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे से क्या गाँव में इतने बड़े मन्त्री जी आते? और गाँव में यदि मन्त्री जी आ

गए तो फिर गाँव के गरीबों की किस्मत बदलने में भला कितने दिन लगने को···?

स्कूल के विधिवत् उद्घाटन के कोई तीसरे-चौथे दिन मेरे दादा जी ने गाँव के ही स्कूल में मुझे दाखिला दिलवा दिया। मेरे दाखिले के बाद गरीबा के बाबू उसके स्कूल में प्रवेश को लेकर बहुत उतावला रहने लगे। वे कई बार अम्बिका ठाकुर हवेली पर जाकर हथजोरी कर आए थे। लेकिन हर बार अम्बिका ठाकुर टाल देते। कभी कहते कि गाँव के बड़टोल के सभी लड़कों का दाखिला पूरा हो जाने दो फिर देखेंगे। फिर कभी कहते कि शिक्षक कम हैं और लड़के रोज-ब-रोज अधिक होते जा रहे हैं, इसलिए दाखिला में परेशानी उठानी पड़ रही है। कभी वे कहते कि अभी तक तो स्कूल के मेम्बरों के लड़कों का भी दाखिला होना बाकी है···और वह इस बात को लेकर घबराए नहीं। गरीबा के बाबू अम्बिका ठाकुर के दरबार में रोज जाते और निराश होकर लौट आते। फिर दूसरी सुबह उनकी निराशा आशा में बदलती और वे अम्बिका ठाकुर की हवेली की ओर बढ़ जाते।

गरीबा के बाबू को तब जोरों का सदमा लगा, जब उन्हें धनेसर, रामदहिन, भोला, मनराज और सुरेखवा के बारे में पता चला, वे लोग भी भूख, गरीबी और बेबसी के शिकार थे और अपने-अपने बच्चों के दाखिले के लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार दौड़-धूप कर रहे थे। लेकिन अन्ततः निराशा ही उनके हाथ लगी। किसी भी तरह बात बनते नज़र नहीं आई, तो गरीबा के बाबू भी चुप बैठ गए।

मैं नियमित रूप से स्कूल जाया करता था। अच्छे-अच्छे कपड़े पहन-कर रोज़ स्कूल जाते हुए मुझे देखकर गरीबा ललचायी निगाहों से देखा करता था। एक दिन मेरे कहने पर वह मेरे साथ हो लिया। कक्षा में वह मेरी ही बेंच पर बैठा था। कुछ लड़के पण्डी जी मास्टर साहब से गरीबा की उपस्थिति के बारे में कह आए थे। पण्डी जी ने गरीबा को अपने पास बुलाया था और बिना कुछ पूछे उन्होंने उसके कोमल गालों पर तड़ातड़ कई तमाचे जड़ दिए थे। गरीबा रोते हुए कक्षा के बाहर चला गया था और कक्षा के लड़के उसे जाते देख खिलखिलाकर हँसते रहे। मैं सूनी और उदास आँखों से उसे जाते हुए देखता रह गया था।

उसके बाबू को यह बात बाण की तरह लगी थी। वे गरीबा को लेकर सेक्रेटरी अम्बिका ठाकुर से फरियाद करने गए थे। लेकिन अम्बिका ठाकुर ने उल्टे उसी पर व्यंगवाण कस दिया—'भला गरीबवा पढ़ने लगेगा तो फिर तुम्हारे बाद गाँव में कोल्हू से तेल कौन निकालेगा रेऽऽ···? गरीबा के बाबू मर्माहत होकर लौटे थे। वे इस दुःख को भूल जाने की कोशिश में घुलते जा रहे थे। कोल्हू की पटरी पर बैठते-बैठते बैल से हमारी दोस्ती-सी हो गई थी। बैल बहुत सीधा था और मुझे देखते ही निकट चला आता था। एक दिन कोल्हू की पटरी पर बैठे-बैठे मेरा बाल-मन बैल की आँख पर बँधी पट्टी पर जा टिका था। मुझे बैल की यह दुःस्थिति असह्य हो गयी थी। एक तो दिन-रात कोल्हू की धूरी पर, चारों ओर अविराम चक्कर काटते रहो, ऊपर से, आँख पर काली पट्टी बँधी रहे, कितनी पीड़ादायक स्थिति है यह। गरीबा के बाबू बैल को सानी-पानी देने के लिए उसे कोल्हू से खोलने आए तो मैंने तपाक से यह सवाल उनके सामने उछाल दिया—'बैल की आँखों पर पट्टी क्यों बाँधते हो काका?'

—'बैल की आँख पर पट्टी नहीं रहे तो उसे अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो जाएगा···आँख पर काली पट्टी रहने के कारण वह इस बात को नहीं समझ पाता है कि उसे एक ही धूरी पर लगातार चक्कर काटना पड़ रहा है···बैल समझता है कि वह आगे बढ़ रहा है···चल रहा है और मीलों आगे निकल आया है···यदि पट्टी न रहे तो वह एक झटके से, कोल्हू के जुए से अलग, स्वतन्त्र होने की कोशिश में कोल्हू का अस्तित्व चरमराकर रख देगा···' गरीबा के बाबू मुझे सविस्तार समझाते रहे थे कि कोल्हू के बैल और गाँव के गरीब आदमी में कोई अन्तर नहीं रह गया है···

पड़ोस की चट्टी के हाई स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर लेने के बाद, आगे की पढ़ाई के लिए, मैं शहर चला आया था। कोई चार-पाँच वर्षों बाद गाँव गया तो गरीबा से भेंट हुई। इन वर्षों में गरीबा की स्थितियाँ तेजी से बदली थीं। उसके बाबू लकवा का शिकार होकर खाट पर पड़े थे। गरीबा का हृष्ट-पुष्ट शरीर अब अस्थियों का नंगा ढाँचा-भर रह गया था। कुछ साल पहले उसकी शादी हो गयी थी और एक बच्चे का वह बाप

बन गया था। घर की सारी जिम्मेदारियाँ गरीबा ने अपने मत्थे ओढ़ ली थीं।

शहर आने के पहले गरीवा से मिलने गया था। गरीबा की यह हालत देखकर मुझे हैरत हुई थी। उसके वावू कोल्हू की पटरी पर अपनी आँखें मूँदे बैठे हुए थे और गरीबा स्वयं कोल्हू के जुए से लगकर धूरी पर चक्कर काट रहा था। कोल्हू का बैल बीमार था और बैल की जगह गरीवा स्वयं जुत गया था। अपने बेटे को कोल्हू के जुए से जुता देख गरीबा के बाबू को तकलीफ हो रही थी, अस्तु उन्होंने अपनी आँखें मूंद ली थीं। गरीबा पसीने से लथपथ हो रहा था और धूरी पर घूमे जा रहा था। मुझे आया देखकर वह थमा और उसकी आँखें डबडबा गयीं। उसने मुझे बताया—'अम्बिका ठाकुर की लड़की का ब्याह होना है···एक बार सरसों से तेल निकालकर ले गया था, तो तेल में तीसी का तेल मिलाने के अरोप में उन्होंने उसकी पिटाई काराई और शुद्ध तेल ले आने का आदेश दिया। अब गाँव में किस की हिम्मत जो ठाकुर की बात भी उठा दे। इसी बीच बैल बीमार पड़ गया और उसे जोतने का मतलब बैल से हाथ धोना···शादी का दिन भी सिर पर आ चला है, सो रोज पाँच-सात घण्टे खुद कोल्हू खिचना पड़ता है···' कहते-कहते गरीबा के चेहरे पर विषाद की रेखाएँ उभर आयीं। मेरा मन भारी हो आया।

जिन दिनों मैं शोध-कार्य कर रहा था, गरीबा अपनी ज़िन्दगी की खोज में मरा जा रहा था···।

दो वर्षों बाद, पी० एच० डी० की डिग्री लेकर जब गाँव लौटा, तो गरीबा से भेंट हुई। उसके बारे में देखने-सुनने को भी बहुत कुछ मिला।

अब तक गरीबा के बाबू मर चुके थे। नून-तेल की दुकान तो पहले ही उड़स चुकी थी। कोल्हू का बैल बीमार रहते-रहते मरने की स्थिति में आ चुका था। कोल्हू की चर्र-चोंय की सुरीली आवाज़ हमेशा के लिए मर चुकी थी। गरीबा के खप्परफूस मकान का एक हिस्सा बरसात के कहर बरपने के कारण भस चुका था। अब तक गरीबा तीन सन्तानों का पिता बन चुका था। वह पहले की अपेक्षा अधिक चिड़चिड़ा, कमजोर और मायूस नज़र आने लगा था।

काका की वह बात जो कोल्हू के बैल की आँखों पर बंधी पट्टी के बारे में उन्होंने बताई थी, आज मुझे गरीबा के साथ आत्मसात होती नज़र आने लगी थी। अब, उसके जीवन के रास्ते में केवल मोड़-ही-मोड़ थे, जैसे कोल्हू के बैल के रास्ते में केवल मोड़-ही-मोड़ होते हैं,…मोड़ों से बनी धूरी पर ही चक्कड़ लगाना पड़ता है। उसके सामने अब कोई रास्ता नहीं होता, जिससे होकर कहीं पहुँचा जा सके। गरीबा एक ऐसे पथ का पथिक बन-चुका था, जिस पर चला तो चाहे जितना जाए, कहीं, पहुँचा नहीं जा सकता …हाँ, कहीं पहुँचने का भ्रम जरूर पाला जा सकता है, क्योंकि आँखों पर काली पट्टी जो चढ़ी होती है…। उस बार मैं नौकरी-पेशा वाला आदमी बन कर गाँव गया था। सोचकर गया था, गरीबा की कुछ आर्थिक मदद करूँगा। जेब में कुछ रुपये लेकर उससे मिलने गया था। वहाँ जाकर मैं आवाक् रह गया। गरीबा का मकान अब तक खण्डहर बन चुका था। मलवे का ढ़ेर मेरी आँखों के सामने बिछा था। माटी की कुछ दीवारें आँधी और बरसात की मार खाकर भी अपने अस्तित्व में होने का साक्षी प्रस्तुत कर रही थीं। जैसे माटी की दीवारें जमकर पत्थर की दीवारें बन गयी हों। मैं निराश लौट आया था। रास्ते में मनराज मिला था, घास का गट्ठर लिए बधार से चला आ रहा था। घण्टे-भर बैठकर वह मुझे विस्तार से समझाता रहा था।

जिन दिनों गाँव के कुछ लोग गरीबा के खेत की खरीददारी की बात कर रहे थे, गरीबा के बाल-बच्चे और पत्नी भूखों मर रही थीं। आय के सारे रास्ते बन्द हो चुके थे और दर-दर भटकना पड़ रहा था।

कई लोग गरीबा की जमीन को अपने खेत से मिलाकर बड़ा चक तैयार करने की योजना बना रहे थे और पैसे का लोभ दिखाकर जमीन बेच देने की नेक सलाह दिया करते। लेकिन गरीबा को अपने बाबू की अन्तिम याद को बेचना मंजूर नहीं था।

गरीबा का बेटा कलुआ अब दस-बारह साल का किशोर हो चला था और उसके भविष्य के बारे में सोचकर गरीबा काँप उठता था। खुद की तरह कलुआ भी अनपढ़-गंवाड़ ही रह जाएगा…यह सोचकर गरीबा काँप उठता।

अन्ततः अपने स्वाभिमान का गला घोंटकर गरीबा कर्ज के लिए हाथ पसारने पर विवश हो गया था। गाँव में कई लोग सूद पर पैसे चलाते थे। गरीबा के पास अपनी जायदाद के नाम पर बीघे-भर की जमीन थी, इसलिए गाँव में पैसे मिलने में उसको दिक्कत नहीं थी। सबसे पहले वह अम्बिका ठाकुर की हवेली में गया था। अम्बिका ठाकुर ने साफ-साफ करार कर लिया था कि नियत समय तक यदि वह पैसे का भुगतान नहीं कर सका, तो फिर अपनी जमीन की रजिस्ट्री वह ठाकुर के नाम कर देगा। दो हजार के कागज पर ठेप्पा लेकर अम्बिका ठाकुर ने उसे महज आठ-सौ रुपये दिये थे। साथ ही गरीबा को इस बात की सख्त हिदायत दी गयी थी कि वह इस बात को गुप्त रखे। ठाकुर को इस बात का भय था कि कहीं गाँव के दूसरे प्रतियोगी भी गरीबा की जमीन पर अपनी गोटी लाल नहीं करने लगें। गरीबा साव गाँव के सात-आठ बड़ी हस्ती के लोगों से मिला था। और पैसे भुगतान नहीं करने की स्थिति में अपना खेत उनके नाम लिख देने का आश्वासन देकर कागज पर ठेप्पा मारकर पैसे लिए थे। तकरीबन सभी महाजनों ने उसे इस बात की सख्त हिदायतें दी थीं कि वह बात को पूरे तौर पर गुप्त रखे।

कागज तमादी होने की तारिख के पहले ही से गाँव के महाजनों का तकादा शुरू हो गया था। वे रोज गरीबा के दरवाजे पर आदमी भेजते और गरीबा से भेंट नहीं होने की स्थिति में गरीबा के नाम कीर्त्तन सुनाकर लौट जाते। सभी महाजन बस यही उम्मीद लगाए बैठे थे कि गरीबा घर आते ही अपनी जमीन उनके नाम लिख देगा। लेकिन जब गाँव में बात फैली तो लोगों को आश्चर्य का ठिकाना न रहा और उनका तकादा तेज हो गया। लेकिन बहुत दिनों से गरीबा का कोई अता-पता नहीं था।

एक दिन तड़के सुबह उठकर लोगों ने देखा कि गरीबा साव की जमीन पर एक मकान खड़ा किया जा रहा था। गाँव में रोपनी बनिहारी का काम ठप्प था और गाँव के मर्द, औरतें, बच्चे और बूढ़े मकान खड़ा करने में तन-मन से लगे हुए थे। काम पहर-भर रात से ही शुरू हो गया था और इमारत तेजी से उठती चली जा रही थी। बात गाँव में बिजली की तरह फैली और बड़टोल के लोग इस आश्चर्यचकित करने वाली घटना को देखने के

लिए तेजी से इकट्ठे हो गये।

गरीबा साव के महाजन अपने कागजात लेकर हवा में फड़फड़ाते आए थे। अब भेद पूरी तरह खुल चुका था···

गरीबा श्रमदान कर रहे सैकड़ों मजदूरों के बीच घूम-घूमकर काम का निरीक्षण कर रहा था। सारे के सारे लोग वड़े जोश-खरोश से काम में लगे थे और दीवारें तेजी से उठती जा रही थीं। सारे महाजन बौखलाए हुए थे। और वे आपे से बाहर हुए जा रहे थे। गरीबा ने तो ऐसी मुद्रा बना रखी थी, जैसे किसी को पहचान ही नहीं रहा हो और न किसी से उसका कोई लेने-देन ही हो।

अम्बिका ठाकुर का बेटा सबसे पहले आगे बढ़ा और गरजने लगा—'ई जमीन तुम हमारे नाम लिख दो, नहीं तो अच्छा नहीं होगा···' गरीबा मुस्करा-भर दिया और बोला—'यह सब आपका ही तो है सरकार! इस जमीन पर मिडिल स्कूल बन रहा है···और आप मेहरबानों के पैसे ही से बन रहा है···वरना मेरी भला क्या हैसियत, जो इत्ता बड़ा काम···और सरकार, इस स्कूल में धनी-गरीब, सबके बच्चों की मुफ्त पढ़ाई होगी···और किसी पर कोई रोक-टोक नहीं होगा···।' गरीबा के इस जवाब से सारे लोग चौंक से गये। अम्बिका ठाकुर के लड़के ने ललकारा और महाजनों के साथ उनके कुछ लोग गरीबा साव की हड्डी-पसली एक कर देने के मिजाज के साथ आगे बढ़े। लेकिन तभी गरीबा साव की सुरक्षा में माटी से सने सैकड़ों हाथ उठ आए थे। कुछेक के हाथ में फावड़े थे, कुछ के हाथ में गैंते और कुछ के हाथों में ईंट के टुकड़े। श्रमदान करने वाले सारे लोग, मर्द-औरतें, बूढ़े-बच्चे, रक्तदान पर आमदा हो आए थे।

वे लोग निराश होकर लौटे थे और थाने में जाकर गरीबा साव वल्द बुझावन साब के नाम मुकदमें दर्ज कराये थे।

गाँव का मिडिल स्कूल चलने लगा और लड़कों की संख्या लगातार बढ़ने लगी। प्राइमरी स्कूल के भी कुछ लड़के इस नये स्कूल में नाम लिखाने लगे। गरीबा साव का बेटा कलुआ भी इस स्कूल में ककहरा-पपहरा पढ़ने लगा···।

गाँव के महाजनों का आन्तक काफी बढ़ गया था। गरीबा के नज़र आ

जाने-भर की देर थी। वे उसकी बोटी-बोटी नोच खाने के लिए बेचैन रहने लगे थे। थाना भी अपनी जगह पर ज़रूरत से कुछ अधिक ही सक्रिय हो गया था और कुर्की-जब्ती का वारण्ट लेकर पुलिस गरीबा साव के मकान का चौखट-किवाड़, कोल्हू मशीन, सब कुछ ले जा चुकी थी। थानेदार कलुआ को बेंत से पीट-पीटकर थक गया था, लेकिन गरीबा का अता-पता पुलिस नहीं ले सकी।

० ०

दुखवा में बीतल रतिया

उसने अपनी लचीली कमर को थिरकाना शुरू किया। घूंघट के पनहे को आगे बढ़ाकर नज़रों एवं मुखड़े के सहारे ऐसे रोमांचक हाव-भाव प्रदर्शित किये कि बस, लोग देखते रह गए। शामियाने के इर्द-गिर्द जूझती दर्शकों की भीड़ ने ऊँची आवाज़ों में शोर मचाकर उसकी नृयत्कला को दाद दी। भीड़ के बीच से ललकार की भाषा में एक ऊँची आवाज़ आई '···जिउ जिउरे झरेलवा···' और लोग इस बात से वाफिक हो गये कि बाबू जालिम सिंह भी नाच का लुत्फ लेने आ जमे थे। यह कैसी बात कि झरेला गोसाईं का नाच से और जालिम सिंह उपस्थित नहीं रहें। दस-दस के दो कड़कड़िया नोट, जालिम सिंह ने झरेला गोसाईं के ब्लाउज में खोंस दिए। दर्शकगण कुछ देर तक तालियाँ बजाते रहे थे। हरमोनियम मास्टर आवाज़ की रिक्तता को पूरा करने के लिए गाए जा रहा था···एगो चुम्मा देके जइह हो करेजउ ऽऽऽ···।'

मेरे गाँव में हरेक साल दुर्गा पूजा के अवसर पर झरेला गोसाईं अपनी नाच पार्टी की मुफ्त सेवा देता है। आस-पास के गाँव के लोग, कई-कई कोस पैदल चलकर, नाच देखने के लिए आते हैं। महुआ गाछ का मैदान दर्शकों की भीड़ से ठसाठस भर जाता है। इस साल लगातार दो दिनों तक कार्यक्रम चलता रहा। लोगों में इनाम देने की होड़-सी मच गई। मण्डली को इस साल अच्छी आमदनी हुई।

झरेला गोसाईं की नाच पार्टी, अब इलाके की सबसे अधिक नाम वाली मण्डली बन गई है। पहले जब भिखारी ठाकुर की नाच पार्टी चलती थी, तब भी झरेला गोसाईं की पार्टी दो नम्बर पर थी। भिखारी ठाकुर की मृत्यु के बाद उनकी पार्टी के सभी नामी-गिरामी कलाकार झरेला की पार्टी

में आ गए। चितकाबर लाल-जैसे विदूषक के झरेला की पार्टी में आ जाने से मण्डली की ख्याति काफी बढ़ गयी।

गौशाला से सटा टोला गोसाईं टोल कहा जाता है। इस टोले में आठ-नौ परिवार गोसाईं लोग रहते हैं। परम्परागत रूप से इनका मुख्य धन्धा रहा है, किसी का इन्तकाल होने पर, श्राद्धकर्म में महापात्र का काम करना। गाँव जवारों में गोसाईं परिवारों की कमी है। इसलिए, उनका इलाके पर एकाधिकार चलता है। लोग अक्सर मरते ही रहते हैं, अतएव, इनका धन्धा कभी मन्द नहीं पड़ता।

गाँव के लिए गोसाईं टोल की बहुत उपयोगिता रही है। इसके बावजूद यह टोला जमाने से उपेक्षित-सा रहा। बामनटोल की बात कौन कहे, चमरटोल के लोग भी, गोसाईं टोल से घृणा करते हैं। यदि कोई वाहर की यात्रा पर हो और रास्ते में किसी महा पातर पर नज़र पड़ जाए, तो वैसा ही अपशकुन समझा जाता है, जैसे बिल्ली का राह काटना। लोग गोसाईं टोल में प्रवेश करने में भी हिचकते हैं। लोगों का मत है कि महापातर अपना धन्धा जगाने के लिए जिसे देख लेते हैं, उसी पर डीठ गड़ाकर, उसके मरने की कामना करने लगते हैं। बड़े-बूढ़ों का कहना है कि कुत्ते की दोस्ती, काटे तो बुरा, चाटे तो भी बुरा। गोसाईं टोला के कारण गाँव के लोग किसी आकस्मिक अनिष्ट के भय से सदा आन्तकित रहते हैं। गाँव में किसी की जिनी-मरनी होने पर, तुरन्त उस घटना को गोसाईं टोल से जोड़ दिया जाता है। इस टोले को डायन-भूतिन का डेरा समझा जाता है।

झरेला गोसाईं के बाबू ओझा-गुनी भी हैं और महापातार का काम भी करते हैं। काम सिखाने के ख्याल से वे तीन-चार बार झरेला को अपने साथ श्राद्ध कर्मों में ले गए। 'दसवाँ' के दिन उनकी काफी इज्जत होती और मुँह माँगा दान-दक्षिणा मिलता। अधिक से अधिक दक्षिणा लेने के लिए वे रूसा-फुली करते और सन्तुष्ट होने के बाद ही 'कच्चा दूध' पीने की रसम पूरा करते।

श्राद्ध कर्म की अन्तिम प्रक्रिया होती है, महापातार द्वारा कच्चा दूध पीना। महापातर के दूध नहीं पीने पर मृतक की आतमा को शान्ति नहीं

मिलती और प्रेतात्मा, भूत बनकर परिवार वालों को दैनिक्-भौतिक क्षति पहुँचाती है, ऐसा लोग मानते हैं। इस डर से लोग महापातर को नाराज़ नहीं करते और मुँह माँगा दान देते हैं। लेकिन बाद में महापातर को गालियाँ दी जाती हैं। दरअसल, यह एक 'टोटरम' है कि महापातर को गाली देकर भगा देने से यम के पुनः आने की सम्भावना नहीं रह जाती।

परिवार के परम्परागत पेशे में उसे बचपन से ही अभिरुचि नहीं रही। उसी समय से वह गिरधारी बाबा के मठ पर आता जाता था। बाद में, वह गिरधारी बाबा का चेला बन गया। गिरधारी बाबा मस्तमिजाज आदमी थे। गिरधारी बाबा के पास गाँव-जवार के साधु-सन्त से लेकर लँगा-लफँगा तक सभी पहुँचते। चोर जब चोरी करने के लिए निकलते तो बाबा का आशीर्वाद लेना नहीं भूलते। कोई शरीफ आदमी किसी भले काम की शुरुआत के पहले बाबा का चरण छू लेना ज़रूरी समझता। सुबह से शाम तक मेला लगा रहता, बाबा के पास। चीलम पर गाँजा हमेशा सुलगता रहता। ढ़ोलक और झाल हमेशा टनकते रहते। कभी-कभी नाच-वाच भी होता। एक तरह से गाँव का यही सार्वजनिक स्थान था। उस पर गिरधारी बाबा की विशेष कृपा-दृष्टि रहती थी। बाबा ने स्वयं उसे गाना-बजाना सिखाया। चैती, फगुआ, कीर्तन आदि गाँव के सामूहिक गायन के कार्यक्रमों में वह अच्छा ढ़ोल बजाता था। कुछ दिनों में उसके लोक-गीत गाँव में लोकप्रिय बन गए। गाने-बजाने में उसने अच्छी ख्याति पा ली। थोड़े ही दिनों में वह गाँव के सांस्कृतिक जीवन का केन्द्र बिन्दु बन गया।

उसका रंग एकदम साफ था और उसके चेहरे पर गँबई रौनक और मासूमियत झलकती थी। आँखें बड़ी-बड़ी और नशीली लगती थीं। उसने अपने बाल बढ़ा लिए थे। चरखाने की लूँगी पहने, कँधे पर लाल रंग का अँगौछा डाले, किसी लोक-गीत का राग अलापते, किसी बधार में वह, मुझे अक्सर मिल जाया करता था।

अचानक सुनने में आया कि गिरधारी बाबा बोरिया-बिस्तर सहित लापता हो गए। बात जोर पकड़ती गई क्योंकि झरेलवा का कोई पता नहीं था। यह बात जोरों से फैली कि गिरधारी बाबा झरेलवा को लेकर भाग गए। गाँव के कुछ धनी-मानी लोग गिरधारी बाबा के इस चाल से बहुत

खिन्न थे। बाबू जालिम सिंह गुस्से में आकर थाने में 'सनहा' लिखवा दिए। उनके लोगों ने गिरधारी बाबा की कुटिया उजाड़ दी और चीज़ें तहस-नहस कर डालीं। अब बाबा का चरित्र गाँव वालों के सामने नुमाँया हो चुका था। कुछ लोग गिरधारी बाबा के पकड़े जाने पर जमकर पिटाई करने की योजना बना रहे थे।

लेकिन कुछ ही दिनों के बाद, झरेला गोसाईं को एक टुटपूँजिया नाच-पार्टी में नाचते देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ था। जालिम सिंह ने उसे बुलवाकर गिरधारी बाबा के बारे में विस्तार से पूछताछ की थी। फिर एक बार लोग भ्रम में पड़ गए थे। गिरधारी बाबा के कट्टर समर्थकों का कहना था कि बाबा अपने योग बल से अर्न्तध्यान हो गए थे।

इस नाच पार्टी में वह तीन रुपये रात पर भर्ती हुआ था। मण्डली में पहले से कुल आठ जने थे और इक्कावन रुपये प्रति रात का सट्टा होता था। पहले पहल जब वह भर्ती हुआ था, वह गाँजा का चीलम सुलगाने, डुग्गी सेंकने और हारमोनियम का सन्दूक ढोने का काम करता था। मण्डली में रहकर कुछ ही दिनों में उसने नाचना भी सीख लिया।

झरेला गोसाईं के नाचने से मण्डली की ख्याति बढ़ी थी और मास्टर ने तुरन्त सट्टे की कीमत बढ़ा दी थी। वैसे भी मण्डली में नाचने वालों की कमी थी। केवल दो नर्तक थे। उनमें पहला कोई साठ-पैंसठ वर्ष का बूढ़ा हो चला था। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं और गाल धँस गए थे। उसकी आवाज़ काँपती हुई निकलती थी। जब वह सज-धजकर नाचने लगता था तो ठीक अस्सी साल की सधवा बुढ़िया की तरह लगता था। अक्सर युवक दर्शक उसे मंच पर से भगाने का प्रयास करते। हाँ, बूढ़े-बुजुर्ग लोग उसे 'निर्गुण' गाने की फरमाइश ज़रूर करते थे। उसके नृत्य में एक और खासियत थी। वह कोरदार थाली की धार पर और बोतलों की गर्दन पर खड़ा होकर नाच सकता था। नाच के दौरान वह व्यायाम और योग की कई करामातें दिखाता था। दूसरा नर्तक उम्र से अधेड़ लगता था। लेकिन उसके गले की आवाज़ मधुर थी। दर्शक उसे काम-चलाऊ मान लेते थे। झरेला गोसाईं के मंच पर आते ही दर्शक उसके पीछे लट्टू हो जाते थे। इसलिए वह मण्डली की जान बन गया था।

उसके स्वाभिमान को जोरों का धक्का लगा था, जब उसने किसी को 'लौंडा' कहते पहले-पहल सुना था। हमारे यहाँ पुरुष नर्तकों को 'लौंडा' कहा जाता है। उनका रंग-रूप और वेश-भूषा सुन्दरियों का होता है। उनके बाल लम्बे होते हैं तथा आँखों में काजल, ललाट पर बिंदिया, पैरों में घुंघरु। बाल लम्बे-लम्बे नहीं होने पर ये नकली बाल लगा लेते हैं। छाती पर कपड़े का पुलिन्दा रखकर सुडौल स्तन बनाते हैं। हर तरह के श्रृंगार-प्रसाधनों से सज-धजकर वे नर्तकियों का हाव-भाव ग्रहण कर नाचते हैं।

देश के कुछ हिस्सों में तो युवकों को 'लौंडा' कहकर सम्बोधन का आम प्रचलन है। लेकिन हमारे यहाँ किसी को इस शब्द से सम्बोधन कर देने का मतलब होता है, जान लेने-देने की नौबत आना। झरेला गोसाईं को इस शब्द ने तीर-सा बेंधकर उसे तिलमिला दिया था। लेकिन उसकी प्रतिक्रिया अचानक मर-सी गई थी। उसने अपने स्वाभिमान के चूर-चूर होने की असह्य पीड़ा को चुपचाप सह लिया था।

अगले साल ही उसने नगीना साव की मण्डली पकड़ ली। नगीना साव की नाच-पार्टी की अच्छी ख्याति थी और चार-पाँच सौ रुपये का सट्टा होता था। इस मण्डली में पन्द्रह-सत्रह कलकार थे। यह पार्टी 'लैला मंजनू', 'सोरठा बृजभार', 'आल्हा-उदल', 'बेटी-बेचवा', 'परदेसिया' और 'डाकू मानसिंह' आदि नाटकों का मंचन भी करती थी। इस मण्डली में तीन-चार नर्तकों के अलावा दो नर्तकियाँ भी थीं। मण्डली में नर्तकियाँ केवल इसलिए रखी जाती हैं, क्योंकि महीन रंगबाज लोग 'लेडी' को अधिक महत्त्व देते हैं। नाच-पार्टी का स्तर जानने के लिए वे पूछते, कि पार्टी में कितनी 'लेडी' हैं?

इस मण्डली के पास श्रृंगार के अच्छे प्रसाधन थे और संगीत के अच्छे वाद्य यंत्र। इस मण्डली में आते ही झरेला गोसाईं की कला और निखर गई। कुछ ही दिनों में उसने मण्डली के तमाम नर्तकों को मात कर दिया। यहाँ तक कि दर्शक नर्तकियों के बदले झरेला गोसाईं की ही माँग करते। उसके गीतों और अंग-प्रत्यंगों के थिरकन का ऐसा भावपूर्ण सामंजस्य होता कि दर्शक आनन्द-विभोर हो उठते। इतनी सोहरत किसी भी मण्डली के किसी नर्तक को कभी नहीं मिली।

एक बार गाँव में किसी के घर बारात आई थी। नगीना साव की मण्डली नाच रही थी। उसमें रात के एक पहर बीत जाने पर झरेला गोसाईं मंच पर आया था। उसने एक गीत गाया था '...आग लागे सईंया के ऽऽ सुरतिया ऽऽऽ...दुखवा में बीतल रतिया ऽऽऽ...।' इस गीत ने दर्शकों पर जादू-सा रोमांचक प्रभाव डाला था। एक के बाद एक लगातार फरमाइशें होती रहीं थी। गाँव के सभी धनी-मानी लोग नाच का लुत्फ़ लेने आ जमे थे। झरेला-गोसाईं पर इनाम के रूप में नोटों की बारिस होने लगी थी। इनाम देने की जैसे होड़ मंच गई। उसके ब्लाउज में इतने अधिक रुपये नत्थी कर दिए गए थे कि ब्लाउज रुपये के छापा वाले का बना दीखता था।

दो-तीन घण्टों तक दर्शकों ने उसे मंच से जाने की अनुमति नहीं दी। मेकअप के खेमे में कई नर्तक और दोनों नर्तकियाँ सज-धजकर बैठे रहे। लेकिन लोग तैयार नहीं थे, उनका नाच देखने के लिए। झरेला के पीछे लोग लट्टू हो रहे थे। जैसे-जैसे लोगों की फरमाइश होती गई, उसका उत्साह बढ़ता ही गया और अपनी कला को नए-नए ढंग से प्रस्तुत करके वह लोगों को चमत्कृत करता गया। आज वह स्वयं को गौरवान्वित भी महसूस कर रहा था। लेकिन किसी भी चीज़ की एक हद होती है। लगातार तीन-चार घण्टों तक नाचते-नचाते वह बिल्कुल थक गया था। गाने के साथ भाव-अभिव्यक्ति को संतुलित करने में कठिनाई होने लगी थी। हाथ-पैर बुरी तरह दुख आए थे। कमर थिरकाने पर पेट में चुभन होने लगती थी। उसने दर्शकों से हाथ जोड़कर क्षमा माँगी। लेकिन लोग तैयार नहीं थे। मुख्य रूप से गाँव के धनी-मानी और नाम-धाम रखने वाले तीन-चार लोग अड़ गए थे।

कला किसी के लिए हानिप्रद नहीं होती। लेकिन झरेला गोसाईं की कला का यह दुर्भाग्य रहा, कि उसे गाँव के दंगे का माध्यम बनना पड़ा।

वैसे, घटना कोई विशेष नहीं थी। बस, बात इतनी हुई थी कि झरेला जब मंच से जाने लगा, तो जालिमसिंह ने अपने गले का सोने का हार उसे पहना दिया। यह जालिमसिंह की ओर से एक गाना की फरमाईश

पूरी करने के लिए अग्रिम उपहार था। झरेला गोसाईं ने जालिमसिंह की फरमाईश पूरी की···हमरा उठताऽहो राजा जी दरदिया ऽऽ···' दर्शक इस गाने पर झूम से गए। और इसके बाद फरमाइशों का फिर तांता बंध गया। बालमराय ने अपनी चाँदी की बनी छड़ी देते हुई फरमाईश कर दी। नगीन्दर चौधरी ने अपने आदमी भिजवाकर, घर से रुपये मंगवाए। झरेला गोसाईं के लिए धर्मसंकट खड़ा हो गया। वह किसकी फरमाईश पूरी करता और किसकी नहीं। इसलिए, वह चुपचाप उठकर, मेकअप के खेमे में चला गया। बस, बात इतनी हुई थी कि बालमराय उबल पड़े। उनकी प्रतिष्ठा की ह्यानि हुई थी। उन्होंने अपने आदमियों को झरेला गोसाईं को जबरन खींचकर लाने के लिए ललकारा। उनके आदमी अभी उठे ही थे, कि जालिमसिंह उसे बचाने के लिए आगे बढ़ गए। उनके साथ उनके अपने आदमी भी थे। इसी में जमकर लाठी चल गई। कई लोग घायल हो गए। भीड़ में भाग-दौड़ मच गई। नाच पार्टी के मास्टर का माथा फूट गया। झरेला गोसाईं को खींचकर कुछ लोग जबरन गाँव में ले गए।

फिर उसी रात, बालमराय की देहरी पर महफिल जमी थी। बालमराय अब गालियों के साथ फरमाइश करते थे। सुबह होने तक झरेला नाचता रहा था। एक बार तो वह गश खाकर गिर गया था। तब भी उसमें हिम्मत नहीं हुई थी कि वह बालमराय से दो क्षण आराम के लिए भी छुट्टी माँगता।

इस घटना ने गाँव के दलों के मतभेदों की खाई को और बढ़ा दिया। गाँव में झरेला गोसाईं की स्थिति सबसे अधिक असुरक्षित हो गई थी। गोसाईं टोल के लोग झरेला के लिए आगे बढ़ने और प्रतिरोध करने के लिए तैयार नहीं थे। इस घटना के कारण उसका सारा उत्साह निराशा में बदल गया। उसने नाचना-गाना बन्द कर दिया। नगीना साव की नाच पार्टी भी उसने छोड़ दी। इस साल के बाकी लगन में वह कहीं नाचने नहीं गया। घर ही पर रहने लगा, झरेला गोसाईं। अब वह काफी उदास रहने लगा था। गुनगुनाना वह भूल-सा गया था। उसके चेहरे की हँसी खो गई थी। दिन-ब-दिन वह मरियल-सा होता जा रहा था। उसका शरीर भी पीला पड़ने

लगा था।

कुछ ही दिनों बाद झरेला गोसाईं के बारे में जोरों का प्रचार फैला कि जालिमसिंह ने झरेलवा को अपना खास 'लौंडा' रख लिया। यह अफवाह तब लोगों के विश्वास में बदल गई, जब जालिमसिंह के महथिनदाई वाले पन्द्रह कठवा खेत पर झरेला गोसाईं का हल चल गया। लोगों का यह अनुमान था कि जालिमसिंह ने उस खेत की झरेलवा के नाम रजिस्ट्री कर दी। दरअसल यह जालिमसिंह के खानदान की रईसी परम्पराओं की अवहेलना थी। अब तक इस रईस-कोठी में रखैलें रखने का रिवाज़ चला आया था। जालिमसिंह के पिता कौशिकसिंह के पास तीन-तीन रखैलें थीं। लेकिन जालिमसिंह ने रखैल रखने के बदले 'लौंडा' रख लिया।

अब झरेला गोसाईं का मुख्य काम जालिमसिंह की सेवा-सुश्रुषा करना, उनको रिझाना और उनका मनोरंजन करना-भर रह गया था। महीने में कभी एक बार महफिल भी जम जाती, जिसमें जालिमसिंह के अपने आदमी नाच-गाने का मज़ा लेते। जालिमसिंह की अनुमति के बगैर अब झरेला कहीं नाच-गा नहीं सकता था। जालिमसिंह ने झरेलवा की सुरक्षा की पूरी जिम्मेवारी अपने पर ले ली थी। वह जिधर जाता था, उसके साथ जालिमसिंह के एक-दो आदमी साथ ज़रूर जाते थे।

लेकिन तीन-चार महीना बाद ही झरेला गोसाईं ने अपनी अलग नाच-पार्टी बनाकर लोगों को आश्चर्य में डाल दिया। तीन-चार कार्यक्रमों में ही दर्शकों ने यह घोषणा कर दी कि झरेला की नाच-पार्टी भिखारी ठाकुर के बाद दूसरे नम्बर पर थी। भिखारी ठाकुर के मरते ही उसकी पार्टी इलाके की सर्वश्रेष्ठ पार्टी बन गई। जिस बारात में झरेला की पार्टी का सट्टा हुआ, तो समझिए कि वह शादी काफी धूम-धाम से हुई। नाच पार्टी को श्रेष्ठ स्तर पर पहुँचने के लिए झरेला ने कम प्रयास नहीं किए। वह स्वयं आज तक पार्टी के मुख्य आकर्षण का केन्द्र बना रहता था। उसके गाने के ढंग, भाव-प्रदर्शन की अदा और नाच की स्तरीयता में कोई तब्दीली नहीं आई थी। दर्शक उसके मुँह से इस गीत को सुनने के लिए बेचैन-सा हो उठते थे। '···दुखवा में बीऽऽतल रतिया···'

हीरामन बुआ की लड़की जवान हो गई थी। उसकी शादी के लिए

बुआ काफी परेशान थीं। घर में कोई मर्द था नहीं, जो वर ढूँढ़ता और दूसरे काम-काज करता। हीरामन, यदि जीते होते, तो भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। वे अक्सर दारू पीया करते थे और छबीली पनेरिन के पास भी जाते थे। इसी से बाप-दादे की सारी जमीन-जायदाद गर्क हो गई। हीरामन मरते-मरते डेढ़-पौने दो बीघा जमीन और एक छप्पर फूस-मकान छोड़ गए। हीरामन बुआ के गहने-वहने तो पहले ही चट गए थे। इसलिए उनके जीने या मरने से कोई अन्तर नहीं पड़ता था।

बुआ के लिए जीवन-निर्वाह एक कठिन समस्या बन गई थी। कुछ लोगों ने बुआ को सुझाव दी थी, कि वे बाकी खेत-बघार को भी बेच दें। लेकिन बुआ ने ऐसा नहीं किया। वे निर्णय कर चुकी थीं कि बेटी की शादी में ही खेत-बघार बेचेंगी। इसलिए बुआ के समाने खाने-पाने और पहनने-ओढ़ने की समस्या उठ खड़ी हुई थी। बुआ आधे की बटाईदारी पर महुआ का फूल चुनती थीं। महुआ के फूल चुनकर वे उसे सुखा देतीं और दारू बनाने के लिए गाँव के पंसारी-वनिया उसे खरीद लेते। फसल कटने के समय बुआ खेत-खेत घूमकर झड़े हुए दाने चुनती थीं। अबारा-अनेरिया गाय-बैलों का गोबर बटोरकर वे गोयठा पाथतीं और उसे बेचतीं। गाँव-पड़ोस में यदि किसी के घर शादी-वादी होती तो बुआ 'झुम्मर' गाने जातीं। किसी के लड़का जनने पर वे 'सोहर' गातीं और 'नेग' लेतीं। 'नेग' में बुआ को कभी-कभार धोती-साड़ी भी मिल जाते।

हीरामन ने अपनी अधिकांश जमीन जालिमसिंह के हाथों बेची थी। इसलिए बुआ पहले जालिमसिंह के पास ही गईं। लेकिन जालिमसिंह ने जमीन खरीदने के प्रति कोई खास अभिरुचि नहीं दिखलाई। बुआ हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाई थीं, तब जालिमसिंह उनकी जमीन खरीदने के लिए तैयार हुए थे। लेकिन जालिमसिंह ने जमीन का जो दाम लगाया, वह बहुत ही कम था और बुआ उस भाव से सन्तुष्ट नहीं थीं। गरजू समझकर जालिमसिंह ने कीमत नहीं बढ़ाई।

बालमराय के पास चली आईं हीरामन बुआ। बालमराय नया पर धनी-मानी बने थे। कलकत्ता में उनका गाय-भैंस के दूध का बिजनेस चलता था और उसमें अच्छी कमाई होती थी। साथ ही बालमराय खेत-बघार

बढ़ाने में दिलचस्पी लेते थे। बुआ ने बालमराय के हाथ खेत की रजिस्ट्री कर दी

लेकिन खेत बिक जाने के बाद बुआ पर जैसे आफत आ पड़ी। जालिमसिंह बहुत खिसिया गए थे और उनके लोग कई बार बुआ को धमकी दे गए थे। राजपूत टोले के कुछ छोकरे लंगई-लफंगई पर उत्तर आए थे। शाम को धुँधलका छाते ही वे बुआ के छप्पर पर ढ़ेला फेंका करते थे। इससे बुआ डर जाती थीं और उसे रात-भर नींद नहीं आ पाती थी। उनके डर से बुआ अपनी लड़की को एक पल भी अकेला नहीं छोड़ती थीं।

एक दिन बुआ गोसाईं टोला गयी थीं। झरेला गोसाईं से वे मिली थीं। वह बुआ की बेटी की शादी में मुफ्त नाचने पर तैयार हो गया था। बुआ की सहूलियत के लिये उसने बत्ती-शामियाना आदि की व्यवस्था की जिम्मेवारी भी स्वयं पर ले ली थी।

०

गाँव से सटे शिवाला पर शामियाना लगा था। इसी में बारात टिकी थी। झरेला गोसाईं की नाच-पार्टी नाच रही थी। आज झरेला गोसाईं के नाच में एक नया आकर्षण था, भीड़ लगातार बढ़ती गयी थी। बालमराय और नगीन्दर चौधरी भी आए थे, नाच देखने। लेकिन न जाने क्यों, जालिमसिंह नाच देखने नहीं आए।

जालिमसिंह अपनी कोठी में आदमियों के साथ बैठे हुए थे। दारू और गाँजे की चीलम के दौर चल रहे थे। उनके आदमी पीने-खाने में खो गए थे। लेकिन जालिमसिंह बेचैन से हो रहे थे। उनके कानों में एक सुरीली आवाज़ टकरा रही थी '···आग लागे सईयाँ के ऽऽ मु ऽऽ रतिया···दुखवा में बीतल ऽऽ रतिया ऽऽ···' इस गाने को कैसे भूल सकते थे बाबू जालिम-सिंह ? उनके अन्दर बेचैनी का भयानक तूफान मच गया था। उनके चेहरे के रंग तेजी से बदल रहे थे।

मण्डप में शादी की रसम शुरू होने से पहले ही बुआ ने झरेला को शामियाने से बुलवाया था। जात-पाँत का भेद किए बिना बुआ ने उसे भाई का रसम पूरा करने के लिए कहा था। झरेला मण्डप में घुसा था और वर-

बधू पर अछत-फूल छिड़क दिए थे। तब बुआ की आँखों में आँसू उमड़ पड़े थे। झरेला शामियाना के लिए लौट गया था।

लेकिन शामियाने तक वह पहुँच नहीं पाया था। गाँव से बाहर निकलते ही कुछ लोग उस पर टूट पड़े थे। कुछ देर तक लाठियाँ बरसती रही थीं। बाद में वह भैंरों बाबा के पेड़ के नीचे वाले बरहम-चबूतरे पर जा गिरा था। चीख-पुकार सुनकर कुछ लोग इधर आए थे। टार्च की रोशनी में वे झरेला गोसाईं को बेहोश पाए। उसके नाक से खून के फव्वारे चल रहे थे और सर फट गया था। बैलगाड़ी पर लादकर उसी रात उसे आरा लाया गया था और अस्पताल में उसे भर्ती कराया गया था।

दो-तीन दिनों बाद मैं अस्पताल गया था। सर्जिकल वार्ड के तेरह नम्बर बेड पर था वह। उसके एक पैर पर प्लास्टर चढ़ा था और दोनों हाथों को कमानियों के सहारे सीधा बाँध दिया गया था। मेरे सिरहाने पहुँचते ही उसने आँखें खोल दी थीं। उसके आँखों से आँसू के बूँद छलक गए थे। मैंने पूछा था—

—कैसे हो अब ?

—अभी जी रहा हूँ भईया ! उसका गला रूँध-सा गया था।

—कौन-से लोग थे ?

—अपने ही लोग ! वह डबडबा गया था।

—जालिमसिंह के आदमी तो नहीं थे ? मैंने फिर पूछा था।

—'...' उसने कोई जबाव नहीं दिया।

—माला कहाँ है ? एक पल बाद उसने पूछा।

—वह ससुराल चली गई। लेकिन हीरामन बुआ पागल हो गई हैं। मैंने उसे बताया। उसने एक लम्बी साँस ली थी। फिर मैं लौट आया था।

एक-सवा महीने बाद झरेला अस्पताल से मुक्त होकर गाँव आया। अब वह घर से बाहर नहीं निकलता। वह अभी ठीक से चल-फिर भी नहीं सकता। उसके दाँए पैर पर अब भी सेंधा नमक और कडुवा तेल रगड़ा जाता है। एक दिन मैंने उससे पूछा—अब क्या करोगे झरेला ?

—अब नाच तो सकता नहीं भईया। अब बाबू के साथ कच्चा दूध

पीने जाया करूँगा···उसके इस जवाब ने मुझे भीतर से बाहर तक झकझोर-कर रख दिया। उसके मन में दो बातों का बहुत दुख था। एक तो वह अब नाच नहीं सकता और दूसरे, लोग उसकी नृत्य-कला को बहुत जल्द भूल गए। आज वह यदि किसी से दस पैसे भी माँगे, तो पैसा देने वाला बिना उसे देखे आगे बढ़ जाएगा।

उसी रात तीसरे पहर आवारा कुत्तों ने भौंककर मेरी नींद तोड़ दी। रात के शान्त-स्तब्ध वातावरण में तैरती मन्द हवा के साथ एक सुरीली आवाज़ कानों तक आ रही थी '···आग लागे···सईंया के ऽऽ सुरतिया ऽऽऽ···दुखवा ऽऽ में बीतल रतिया···' कुछ पल बाद यह आवाज़ मन्द पड़ती गई। तभी मुझे अहसास हुआ कि बगल की कोठी से एक पैशाचिक हँसी का बवंडर उठ रहा है। जालिमसिंह अट्टहास कर रहे थे। इतनी रात गए। झरेला की सुरीली आवाज़ जालिमसिंह के अट्टाहस के नीचे दबती चली गई।

लेकिन, मुझे ऐसा महसूस होता है कि झरेला गोसाईं अभी आधा से अधिक जिन्दा है और आधा से कम ही मरा है'···

○ ○